ई-पत्रिका
₹ 49/-

▶ **ड्रैगन से दोस्ती**
मजबूरी या मास्टरस्ट्रोक?

▶ **यूरोप का औपनिवेशिक खुमार**
भारत की रणनीतिक ललकार

CULT CURRENT

वर्ष: 8 अंक: 10 अक्टूबर, 2025

WE MAKE VIEWS

तरुणाघात

हिल गए सिंहासन

Let's 360°

- Media Consultancy
- Web solution
- Advertising
- Publication
- Languages Services
- Survey & Research
- Branding
- AV Production
- Campaign management
- Event organizer
- PR partner, PR associate
- Content writer & provider
- Media analyst

URJAS MEDIA VENTUE IS PERHAPS THE ONLY CONSULTING FIRM THAT CAN GIVE YOUR ORGANISATION A 360 DEGREE MEDIA BUSINESS GROWTH CONSULTING THROUGH IT'S 360 CAPABILITIES. FOR US, CONSULTING DOES NOT ONLY MEAN MECHANICAL COST REDUCTION THROUGH BETTER IT APPLICATIONS, WE FIND OUT WHAT YOUR ORGANISATION REALY NEEDS AND GIVE YOU AN INTELLECTUAL SOLUTION THAT HELP YOU REDUCE COST AS WELL AS HELPS YOURS BUSINESS GROW AND BEAT THE COMPETITION.

NOW!! OUR CONSULTANT WILL GET BACK TO YOU IN 24 HOURS AND PUT YOU IN TO THE HIGH GROWTH PATH

SMS 'BUSINESS GROWTH' TO +91-8826-24-5305 OR E-MAIL info@urjasmedia.com

URJAS MEDIA VENTURE

BEAT THE COMPETITION

www.urjasmedia.com

गुमनाम नायक

खेती में किस्मत आज़माने वाला जौहरी

संतोष जाधव

सांगली, महाराष्ट्र के संतोष वसंत जाधव उस शक्तिशाली कहावत का सटीक उदाहरण हैं: 'खेती सबसे अच्छा पेशा है।' जहाँ कई लोग शहर की नौकरियों के लिए कृषि छोड़ देते हैं, वहीं संतोष ने विपरीत राह चुनी। उन्होंने अपने परिवार के सफल सोने और चांदी के कारोबार से आधुनिक खेती की ओर कदम बढ़ाया। खेती में गहरी रुचि और अपने पिता के पारंपरिक तरीकों से होने वाले मामूली मुनाफे को देखकर प्रेरित होकर, संतोष सीखने में पूरी तरह से डूब गए। उन्होंने प्रशिक्षण लिया, सफल किसानों को करीब से देखा, और आधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हुए खुले मैदान में शिमला मिर्च की खेती शुरू की। नतीजे तुरंत और लाभदायक रहे, जिसके बाद उन्होंने जल्द ही बड़े पैमाने पर काम शुरू किया और रंगीन शिमला मिर्च उगाने के लिए एक पॉलीहाउस का निर्माण किया। ●

संपादकीय टोली

संपादकीय

राष्ट्रीय संपादक
संजय श्रीवास्तव

संपादक
श्रीराजेश

प्रबंध संपादक
सच्चिदानंद पाण्डेय

रोमिंग संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

राजनीतिक संपादक
अंशुमान त्रिपाठी

मेट्रो संपादक
शक्ति प्रकाश श्रीवास्तव
डॉ. रुद्र नारायण

अंतर्राष्ट्रीय संपादक
श्रीश पाठक

कारपोरेट संपादक
गगन बत्रा

खेल संपादक
जलज श्रीवास्तव

डिजीटल संपादक
सुनीता त्रिपाठी

सहायक संपादक
संदीप कुमार

उप संपादक
मनोज कुमार
संतु दास

साहित्य संपादक
अनवर हुसैन

कला संपादक
जया वर्मा

वेब एवं आईटी विशेषज्ञ
अनुज कुमार सिंह

फोटो संपादक
विवेक पाण्डेय

विशेष संवाददाता
कमलेश झा
विकास गुप्ता

संवाददाता
संदीप सिंह
अनिरुद्ध यादव

ब्यूरो प्रमुख (अंतर्राष्ट्रीय)
अकुल बत्रा (अमेरिका)
सी.शिवरतन (नीदरलैंड)
जी. वर्मा(लंदन)
डॉ. मो. फहीम अकबर (पाकिस्तान)
ए. असगरजादेह (ईरान)
डॉ. निक सेरी (मलेशिया)

ब्यूरो प्रमुख (राष्ट्रीय)
आर. रंजन (नई दिल्ली)
संजय कुमार सिंह (लखनऊ)
कैप्टन सुधीर सिन्हा (रांची)
निमेष शुक्ल (पटना)
नागेन्द्र सिंह (कोलकाता)
राकेश रंजन (गुवाहाटी)

विपणन
सत्यजीत चौधरी
महाप्रबंधक

ऑनलाइन प्रसार
सृजीत डे

वर्षः 8 अंकः 10 अक्टूबर, 2025

Follow us:
fb.com/cultcurrent @Cult_Current cultcurrent@gmail.com

URJAS MEDIA VENTURE
Head office: Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109, INDIA, Tel: +91 6289-26-2363
Corporate Office: 14601, Belaire Blvd, Houston, Texas 77083 USA Tel: +1 (832) 670-9074
Web: http://cultcurrent.in

Cult Current is a monthly e-magazine published by Urjas Media Ventures from Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109.
Editor: Srirajesh

Disclaimer: All editorial and non-editorial positions in the e-magazine are honorary. The publisher and editorial board are not obligated to agree with all the views expressed in the articles featured in this e-magazine. Cult Current upholds a commitment to supporting all religions, human rights, nationalist ideology, democracy, and moral values.

COVER STORY 26

तरुणाघात
हिल गए सिंहासन

तरुणाघात पड़ोस में बवाल, भारत में सवाल 38

लद्दाख की गूंज सत्ता व स्वायतत्ता की जंग 46

12 पानी पर दांव

अफगानी नहर बदेलगी यूरेशिया की किस्मत!

16

ड्रैगन से दोस्ती
मजबूरी या मास्टरस्ट्रोक?

प्रेत युद्ध अमेरिका का भ्रम 20

अमेरिका की जुआरी चाल 24

द्वी-राष्ट्र सिद्धांत अभी नहीं तो कभी नहीं... 50

पाक-सउदी समझौता रणनीतिक झटका 44

भारत की समुद्री छलांग नेवी ड्राइव 2035 56

अलववदा MiG-21! छह दशकों की 60

यूरोप का औपननवलेशिक खुमार... 66

ट्रंप की H-1B दांव संरक्षणवाद या.... 70

संयुक्त राष्ट @ 80 सुधार या अप्रासंगिकता? 74

'जॉली एलएलबी 3 नयाय के कटघरे में हास्य 76

04

बी-टाउन की सबसे हॉट मॉम!

Small talk

बी-टाउन की सबसे हॉट मॉम!

बॉलीवुडकी ग्लैम क्वीन कियारा आडवाणी ने नई गपशप को हवा दे दी है! हाल ही में उन्हें एक शानदार सोने का 'Mama' (मामा) नेकलेस पहने हुए देखा गया, जिसने प्रशंसकों के बीच हलचल मचा दी और उनकी नई माँ की भूमिका की पुष्टि कर दी। सोशल मीडिया पर हार्ट इमोजी और मज़ेदार टिप्पणियों की बाढ़ आ गई—कुछ तो उन्हें 'बी-टाउन की सबसे हॉट मॉम' भी कह रहे हैं। रेड कार्पेट से लेकर बेबी बॉटल तक, कियारा हर चीज़ को सहज आकर्षण के साथ संभालती हुई दिख रही हैं। जहाँ प्रशंसक अभी भी सिद्धार्थ मल्होत्रा के साथ उनकी प्यारी जोड़ी पर फिदा हैं, वहीं उनके नवीनतम 'मॉम-ग्लो' ने स्पष्ट रूप से सारी सुर्खियाँ बटोर ली हैं। बी-टाउन की नई पसंदीदा हेडलाइन है: 'मामा मिया, यह कियारा है!' ●

2025 में तहलका मचाने वाली खोजें

कीट जीव विज्ञान में नई खोज

पुसान नेशनल यूनिवर्सिटी और अन्य जापानी संस्थानों के वैज्ञानिकों ने 3D इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी का उपयोग करके 'एशियाई नींबू पत्ती फुदका' के अंदर रहने वाले एक सहजीवी बैक्टीरिया, कैंडिडेटस प्रोफेटेला आर्मातुरा, का अध्ययन किया है। इस अध्ययन में, उन्होंने बैक्टीरिया के भीतर अभूतपूर्व, लम्बी नलिकाकार संरचनाओं की खोज की है। वैज्ञानिकों का मानना है कि ये संरचनाएँ बैक्टीरिया के कार्य और कीट के साथ उसके सहजीवी संबंध के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकती हैं। ●

मशरूम का दोहरा विकास!

वैज्ञानिकों ने एक बड़ी खोज की है: मशरूम ने साइकेडेलिक यौगिक साइलोसाइबिन को विकसित करने की क्षमता एक बार नहीं, बल्कि दो बार और वह भी पूरी तरह से अलग जैव रासायनिक मार्गों से विकसित की। यह एक दुर्लभ अभिसारी विकास का मामला है—जहाँ दो असंबंधित समूह (जैसे साइलोसाइबे और फ़ाइबर कैप मशरूम) स्वतंत्र रूप से एक ही अणु का उत्पादन करना सीख गए। यह खोज जीव विज्ञान और विकासवादी रसायन विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष है। ●

आम जैसे फलों से प्री-डायबिटीज़ में सुरक्षा संभव!

खाद्य पदार्थ की प्राकृतिक शर्करा की मात्रा अपने आप में उसका स्वास्थ्य मूल्य निर्धारित नहीं करती, विशेषकर प्री-डायबिटीज वाले लोगों के लिए। नैदानिक पोषण वैज्ञानिक रैदेह बसीरी के शोध से पता चलता है कि यद्यपि आम जैसे उष्णकटिबंधीय फलों में शर्करा की मात्रा अधिक (लगभग 50 ग्राम) होती है, फिर भी वे मधुमेह के जोखिम वाले लोगों को सुरक्षात्मक लाभ प्रदान कर सकते हैं। यह खोज 'संपूर्ण खाद्य संदर्भ' के महत्व को उजागर करती है। ●

जलवायु महत्त्वाकांक्षा के आकलन में खामी उजागर

यूट्रेक्ट यूनिवर्सिटी के नए शोध ने वैश्विक जलवायु महत्त्वाकांक्षा का आकलन करने के तरीके में एक मूलभूत खामी का खुलासा किया है। शोध का तर्क है कि पिछली गणनाओं ने अनजाने में 'सबसे कमज़ोर देशों की कीमत पर उच्च उत्सर्जकों को पुरस्कृत' किया है। यान रोबियू डु पोंट के नेतृत्व में किए गए इस अध्ययन में पाया गया कि पिछले आकलन उत्सर्जन की 'लगातार बदलती आधार रेखाओं' का उपयोग करते थे। इस पद्धति ने ऐतिहासिक रूप से उच्च उत्सर्जन करने वाले देशों को अपनी पूरी जिम्मेदारी से बचने और जलवायु कार्रवाई में देरी करने की अनुमति दी। ●

VinFast VF6 और VF7 लॉन्च, EV बाज़ार में दस्तक

VinFast ने भारतीय बाज़ार में अपनी VF6 और VF7 इलेक्ट्रिक एसयूवी को लॉन्च कर दिया है, जो ब्रांड के प्रतिस्पर्धी इलेक्ट्रिक वाहन (EV) बाज़ार में कदम रखने का संकेत है। VF6 में 59.6 kWh की बैटरी है, जो 480 किमी तक की रेंज देती है। वहीं, बड़ी VF7 में 70.8 kWh की बैटरी यूनिट है, जिसमें FWD और AWD (ऑल-व्हील ड्राइव) विकल्प मिलते हैं और यह 450–496 किमी की रेंज प्रदान करती है। ●

नियुक्ति

डॉ कनक दास, निदेशक, बीएसआई

डॉ. कनक दास को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (BSI) का नया निदेशक नियुक्त किया गया है। वह इस प्रतिष्ठित संस्थान का नेतृत्व करने वाले पहले माइकोलॉजिस्ट (कवक वैज्ञानिक) हैं। डॉ. दास को कवक वर्गीकरण और जैव विविधता पर उनके महत्वपूर्ण शोध के लिए जाना जाता है।

इस्तीफा

कीर्ति पाण्डेय, अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग

उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग (UPESSC) के अध्यक्ष कीर्ति पांडे ने अचानक अपने पद से इस्तीफा दे दिया है। उन्होंने अपने इस अप्रत्याशित इस्तीफे का कोई कारण नहीं बताया है, जिससे अटकलों का बाजार गर्म है।

उन्होंने कहा

बेंजामिन नेतन्याहू
प्रधानमंत्री, इज़रायल

फलस्तीनी आतंकवाद और रॉकेट हमले इज़रायल की सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा पैदा करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को इज़रायल के अधिकारों को बनाए रखने और आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए कार्रवाई करनी चाहिए।

महमूद अब्बास
राष्ट्रपति, फलस्तीन

इज़रायल की सैन्य कार्रवाई और कब्ज़ा फलस्तीनी लोगों के लिए असहनीय है। स्थायी शांति का एकमात्र रास्ता दो-राज्य समाधान है।

श्रद्धांजलि

महात्मा गांधी, जिनका जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को भारत के पोरबंदर में हुआ था, आधुनिक इतिहास के सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्वों में से एक हैं। भारत में 'राष्ट्रपिता' के रूप में पूजे जाने वाले गांधी ने अपना जीवन सत्य, अहिंसा और न्याय के सिद्धांतों को समर्पित कर दिया।

उन्होंने लंदन में कानून की शिक्षा प्राप्त की और अपने करियर की शुरुआत दक्षिण अफ्रीका में की, जहाँ उन्होंने स्वयं नस्लीय भेदभाव का सामना किया। इन अनुभवों ने उनके सत्याग्रह के दर्शन को आकार दिया—यह अहिंसक प्रतिरोध की एक ऐसी विधि थी जो बाद में भारत के स्वतंत्रता संग्राम की आधारशिला बनी।

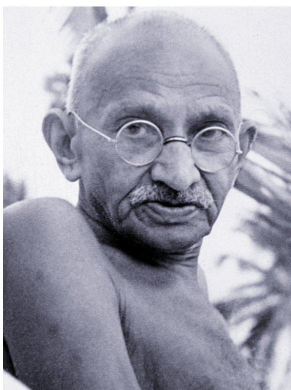

मोहनदास करमचंद गांधी
(02/10/1869-30/01/1948)

गांधी 1915 में भारत लौटे और जल्द ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता के रूप में उभरे। उनके नेतृत्व में असहयोग आंदोलन, नमक मार्च और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे आंदोलनों ने लाखों भारतीयों को ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ एकजुट किया, जिसमें सशस्त्र संघर्ष के बजाय शांतिपूर्ण विरोध पर जोर दिया गया। गांधी के दृष्टिकोण ने मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नेल्सन मंडेला सहित दुनिया भर के अनगिनत नेताओं और आंदोलनों को प्रेरित किया, जो उनके विचारों की वैश्विक प्रासंगिकता को दर्शाता है। राजनीति से परे, गांधी ने सामाजिक सुधारों की वकालत की, आत्मनिर्भरता, ग्रामीण विकास और अस्पृश्यता के उन्मूलन को बढ़ावा दिया। उनका सादा जीवन, अक्सर हाथ से काता हुआ खादी पहनना और विरोध के रूप में उपवास करना, उनके सिद्धांतों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता था। महात्मा गांधी की विरासत पीढ़ियों से गूंज रही है। उनकी सहिष्णुता, करुणा और अहिंसा की शिक्षाएँ न केवल राजनीतिक संघर्षों के लिए, बल्कि रोजमर्रा की जिंदगी के लिए भी शाश्वत सबक प्रदान करती हैं। हर साल, भारत 2 अक्टूबर को गांधी जयंती मनाता है, उनके जन्म का उत्सव मनाता है और शांति, मानवता तथा न्याय की लड़ाई में उनके स्थायी योगदान को सम्मानित करता है। ●

मिशिगन चर्च गोलीबारी को ट्रम्प ने बताया 'ईसाइयों पर लक्षित हमला'

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने मिशिगन के ग्रैंड ब्लैंक में एक लैटर-डे सेंट्स चर्च में हुई घातक गोलीबारी की कड़ी निंदा की है, इसे 'ईसाइयों पर लक्षित हमला' करार दिया है। इस घटना में कम से कम दो लोगों की मौत हुई और कई अन्य घायल हुए। यह हमला तब हुआ जब एक 40 वर्षीय पुरुष संदिग्ध ने व्यस्त चर्च के मुख्य दरवाज़े को अपनी कार से तोड़ दिया और एक असॉल्ट राइफल से श्रद्धालुओं पर गोलियां चलानी शुरू कर दीं, साथ ही कथित तौर पर आग भी लगा दी। पुलिस अधिकारियों ने तुरंत प्रतिक्रिया दी, हमलावर को गोलीबारी में मार गिराया। गोली लगने से घायल हुए दस पीड़ितों को स्थानीय अस्पतालों में ले जाया गया, जिनमें से दो ने बाद में दम तोड़ दिया। इस घटना के बाद, ट्रम्प ने ट्रुथ सोशल पर पोस्ट किया कि यह हिंसा अमेरिका में एक 'महामारी' का हिस्सा है। ●

किंग चार्ल्स के साथ मुलाकात का ट्रम्प की यूक्रेन नीति पर असर

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के यूक्रेन पर रुख में आए हालिया बदलाव—जिसमें उन्होंने रूस को 'कागज़ी शेर' बताकर कीव की निर्णायक जीत का समर्थन किया—का कारण उनकी यूके यात्रा को बताया जा रहा है। यूक्रेनी अधिकारी एंड्री येरमक ने इस यात्रा के महत्व की पुष्टि की। अपनी यात्रा के दौरान, ट्रम्प ने प्रधान मंत्री कीर स्टारर से मुलाकात की और किंग चार्ल्स द्वारा उनका भव्य स्वागत किया गया। येरमक ने विशेष रूप से किंग के प्रयासों और ट्रम्प से मिले लोगों की स्थिति की प्रशंसा की, यह सुझाव देते हुए कि उनके यूक्रेन समर्थक विचारों ने संघर्ष पर ट्रम्प के दृष्टिकोण को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ●

जर्मनी में सिफलिस संक्रमण रिकॉर्ड उच्चतम स्तर पर

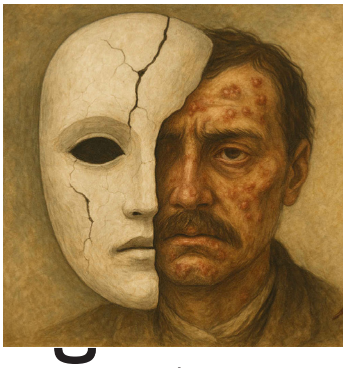

रॉबर्ट कोच इंस्टीट्यूट की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार, जर्मनी में सिफलिस संक्रमणों की संख्या 9,519 मामलों के साथ एक नए रिकॉर्ड उच्च स्तर पर पहुँच गई है, जो सदी की शुरुआत में दर्ज 1,697 मामलों की तुलना में एक बड़ी वृद्धि है।पिछले दो दशकों में यौन संचारित रोग में लगातार वृद्धि हुई है, नवीनतम आँकड़ों में 2023 की तुलना में 3.9% की वार्षिक वृद्धि दिखाई गई है। ●

ICE ने स्कूल बोर्ड प्रमुख को किया गया गिरफ्तार

अमेरिकी आव्रजन और सीमा शुल्क प्रवर्तन (ICE) ने डेस मोइनेस पब्लिक स्कूल्स (DMPS) के अधीक्षक इयान आंद्रे रॉबर्ट्स को हिरासत में लिया है। ICE ने आरोप लगाया है कि वह 'गुयाना का एक आपराधिक अवैध प्रवासी' है, जिसके पास कार्य प्राधिकरण नहीं था, हथियार रखने का पिछला दोष सिद्ध हो चुका था, और जिसके खिलाफ मई 2024 में देश से निष्कासन का अंतिम आदेश जारी किया गया था। रॉबर्ट्स, जो 2023 से प्रति वर्ष $300,000 से अधिक कमा रहे थे, को एक लक्षित अभियान के दौरान हिरासत में लिया गया। ●

अमेरिकी सेना कथित ड्रग तस्करों पर वेनेजुएला में हमले की कर रही तैयारी

एनबीसी ने अमेरिकी अधिकारियों का हवाला देते हुए रिपोर्ट दी है कि अमेरिका वेनेजुएला के भीतर कथित ड्रग तस्करों पर संभावित सैन्य हमलों, जिसमें ड्रग प्रयोगशालाओं और तस्करी समूहों के नेताओं पर ड्रोन हमले शामिल हैं, के लिए 'विकल्प तैयार कर रहा है।' रिपोर्ट के अनुसार, यह कार्रवाई 'कुछ हफ्तों में' हो सकती है, हालांकि राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने अभी तक इसे मंजूरी नहीं दी है। यह संभावित वृद्धि वेनेजुएला के तट से दूर हाल ही में हुए अमेरिकी हमलों के बाद हो रही है। ●

संरा के प्रतिबंध 'स्नैपबैक' से ईरान में आर्थिक संकट

ईरान पर एक बार फिर व्यापक संयुक्त राष्ट्र प्रतिबंध लगाए गए हैं। 2015 परमाणु समझौते के यूरोपीय हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा 'स्नैपबैक' तंत्र लागू करने के बाद ये प्रतिबंध रविवार को स्वतः ही बहाल हो गए। इन प्रतिबंधों में एक हथियार प्रतिबंध, संपत्ति फ्रीज, और बैंकिंग प्रतिबंध शामिल हैं, जिससे पहले से ही संघर्षरत ईरानी अर्थव्यवस्था पर गंभीर असर पड़ने की आशंका है। रूस - चीन के विरोध के बावजूद, पुनः लागू किए गए अंतर्राष्ट्रीय अलगाव ने ईरान में भीतर आर्थिक चिंता को जन्म दिया है। ●

पोलैंड ने यूक्रेनी शरणार्थियों के लिए भत्तों को रोजगार से जोड़ा

पोलैंड के राष्ट्रपति कारोल नवरोकी ने यूक्रेनी शरणार्थियों को मिलने वाले सरकारी भत्तों के नियमों को सख्त करने वाले एक नए विधेयक पर हस्ताक्षर किए हैं। हालांकि यह कानून यूक्रेनियन को कम से कम मार्च 2026 तक पोलैंड में रहने की अनुमति देता है, लेकिन अब यह वित्तीय सहायता तक पहुँच को रोजगार से जोड़ता है, जिसमें मासिक '800 प्लस' बाल सहायता भत्ता भी शामिल है, जिसके लिए एक माता-पिता के लिए रोजगार और बच्चों के लिए स्कूल में नामांकन अनिवार्य है। स्वास्थ्य सेवा जैसे अन्य लाभों के लिए पात्र होने हेतु, शरणार्थियों को अब यह साबित करना होगा कि वे न्यूनतम वेतन का कम से कम 50% कमाते हैं, जिसकी मासिक जाँच की जाएगी। राष्ट्रपति कार्यालय के प्रमुख, ज़बिग्न्यू बोगुकी ने कहा कि यह उपाय 'पोलिश करदाताओं के खर्च पर यूक्रेन से पर्यटन' को समाप्त करता है। ●

चीनी शेयर बाज़ार में विदेशी निवेशकों की वापसी

तीन साल पहले चीनी शेयर बाज़ार से पीछे हटने वाले विदेशी निवेशक अब इसकी ओर फिर से आकर्षित हो रहे हैं। इस नए आकर्षण का मुख्य कारण बाज़ार द्वारा प्रौद्योगिकी क्षेत्र में प्रदान की जा रही संभावनाएँ हैं, जिनमें आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), सेल्फ-ड्राइविंग कारें और दवा उत्पादन में इनोवेशन शामिल हैं। यह बदलाव अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों द्वारा अमेरिकी बाज़ारों से परे विकल्प और सफलता की तलाश को भी दर्शाता है। जैसे-जैसे चीनी सूचीबद्ध कंपनियाँ इन इनोवेशन के माध्यम से प्रभावशाली लाभ कमा रही हैं, वे बड़े विदेशी निवेश को आकर्षित कर रही हैं। ●

नामीबिया के ईटोशा नेशनल पार्क में भीषण आग

नामीबिया ने ईटोशा नेशनल पार्क—अफ्रीका के सबसे बड़े वन्यजीव अभ्यारण्यों में से एक—के लगभग एक तिहाई हिस्से को नष्ट कर चुकी भीषण आग से लड़ने के लिए 500 से अधिक सैनिकों को तैनात किया है। प्रधान मंत्री टीटुंगा न्गुआरे मानोंगो ने इसकी पुष्टि की, कहा कि सैनिक पहले से ही 'भयंकर आग' से लड़ रहे अग्निशामकों, पुलिस और स्वयंसेवकों की मदद करेंगे। यह आग 22 सितंबर को शुरू हुई थी और तेज़ हवाओं तथा सूखी वनस्पति के कारण तेज़ी से फैल गई, जिससे व्यापक पारिस्थितिक क्षति हुई है। ईटोशा काला गैंडा सहित 114 स्तनधारी प्रजातियों का घर है। ज़मीनी बलों के अलावा, सरकार ने दो हेलीकॉप्टर भी तैनात किए हैं। किसी भी मानवीय हताहत की सूचना नहीं है, लेकिन 'अज्ञात संख्या' में वन्यजीव मारे गए हैं। ●

अदाणी फिर विवादों के घेरे में, कांग्रेस बोली – बन गए हैं 'राष्ट्रीय सेठ'

उद्योगपति अदाणी बिहार के भागलपुर जिले के पीरपैंती में 1,050 एकड़ ज़मीन पर प्रस्तावित 2,400 मेगावाट के थर्मल पावर प्लांट को लेकर विवादों में हैं। यह ज़मीन 1 सालाना की सांकेतिक लीज पर 33 साल के लिए दी गई है। कांग्रेस ने इस पर तीखा हमला किया है। कांग्रेस नेता पवन खेड़ा ने अदाणी को 'राष्ट्र सेठ' बताते हुए किसानों पर ज़बरन हस्ताक्षर और औने-पौने दामों पर ज़मीन लेने का गंभीर आरोप लगाया। उन्होंने 10 लाख पेड़ काटने का मुद्दा भी उठाया। दूसरी ओर, प्रधानमंत्री मोदी ने हाल ही में 26,000 करोड़ के इस प्लांट का वर्चुअल शिलान्यास किया, जिसे राज्य सरकार पूर्वोत्तर भारत का सबसे बड़ा निवेश बता रही है। समूह का दावा है कि इससे 10-12 हज़ार रोज़गार पैदा होंगे और बिहार को बिजली मिलेगी। ●

यूपी में जाति का उल्लेख करने पर सख्ती से प्रतिबंध

उत्तर प्रदेश सरकार ने सार्वजनिक स्थानों, कानूनी दस्तावेजों, और पुलिस रिकॉर्ड में जाति के उल्लेख पर सख्ती से रोक लगा दी है। इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक आदेश के बाद यह फैसला लिया गया, जिसने पुलिस रिकॉर्ड में जाति का जिक्र करने को संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ बताया था। इस नए आदेश के तहत, एफआईआर और अन्य दस्तावेज़ों में अभियुक्तों की जाति का उल्लेख नहीं किया जाएगा; केवल माता-पिता के नाम लिखे जाएंगे। इसके अलावा, जाति आधारित रैलियों और वाहनों/साईनबोर्ड पर लगे जातीय नारों पर भी प्रतिबंध रहेगा। यह कदम जाति-आधारित राजनीति वाले राज्य के लिए एक बड़ी चुनौती है। ●

भारतीय जेनेरिक दवाओं पर अमेरिकी टैरिफ का असर नहीं

अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप द्वारा आयातित दवाओं पर 100% टैरिफ लगाने की घोषणा के बावजूद, भारतीय दवा निर्यात पर बड़ा असर होने की आशंका कम है। इंडियन फार्मास्युटिकल अलायंस (IPA) के महासचिव सुदर्शन जैन के अनुसार, भारत मुख्य रूप से अमेरिका को जेनेरिक दवाएं और API निर्यात करता है, जिन पर यह टैरिफ लागू नहीं है। ट्रंप ने टैरिफ केवल ब्रांडेड और पेटेंटेड दवाओं पर लगाया है। जैन ने कहा कि जेनेरिक दवाओं पर टैरिफ लगाना अमेरिका के लिए अव्यावहारिक है। ●

सोनम वांगचुक की गिरफ्तारी पर विपक्ष का विरोध

पर्यावरण कार्यकर्ता और इनोवेटर सोनम वांगचुक को 26 सितंबर को लेह में एक प्रेस कॉन्फ्रेंस से पहले गिरफ्तार कर लिया गया, जिसके बाद वहाँ इंटरनेट सेवाएं भी निलंबित कर दी गईं। विपक्षी दलों ने इस कदम की कड़ी आलोचना की है। कांग्रेस महासचिव जयराम रमेश ने NSA के तहत गिरफ्तारी की निंदा करते हुए कहा कि मोदी सरकार मुद्दों को दबा नहीं सकती। अरविंद केजरीवाल ने इसे 'तानाशाही' बताया, जबकि उमर अब्दुल्ला ने कहा कि केंद्र सरकार ने लद्दाख और जम्मू-कश्मीर से किए वादे पूरे नहीं किए हैं। ●

'आई लव मोहम्मद' बैनर विवाद पर देश भर में प्रदर्शन

उत्तर प्रदेश के कानपुर से शुरू हुआ 'आई लव मोहम्मद' बैनर विवाद उत्तराखंड, महाराष्ट्र और गुजरात समेत कई राज्यों में फैल गया है। मुस्लिम समुदाय पैगंबर से अपनी मोहब्बत ज़ाहिर करने के लिए सड़कों पर उतर आया है। विवाद 5 सितंबर को बारावफात जुलूस के दौरान बैनर लगाने पर शुरू हुआ, जिस पर हिंदुत्ववादी संगठनों ने 'नई परंपरा' बताकर आपत्ति जताई। कानपुर पुलिस ने दूसरे पक्ष का बैनर फाड़ने के आरोप में 9 नामजद लोगों पर एफआईआर दर्ज की। ●

विलुप्त 'नीले तोतों' के कारण अंबानी का 'वनतारा' संदेह में

ब्राजील के जंगलों से 2019 में विलुप्त घोषित किए गए दुर्लभ स्पिक्स मैकॉ ('नीले तोते') के 26 तोते भारत में पाए जाने के कारण अंबानी परिवार का पशु अभयारण्य वनतारा (जामनगर, गुजरात) संदेह के घेरे में आ गया है। यह पक्षी अपने चमकीले रंग और जीवनभर के लिए जोड़े बनाने वाले सामाजिक व्यवहार के लिए जाने जाते हैं। वनतारा, जिसे अनंत अंबानी चलाते हैं, पर 2022 से अब तक 40 देशों से हजारों दुर्लभ और विदेशी जीव आयात करने का आरोप है। अब भारत ही नहीं, बल्कि जर्मनी और ब्राजील भी इस मामले में शामिल हो गए हैं। ●

क्या नीतीश कुमार फिर महिला वोट बैंक पर निर्भर हैं?

बिहार में विधानसभा चुनाव नज़दीक आने के साथ ही, सरकार ने कल्याण और महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए कई कदम उठाए हैं। आशा और आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के मानदेय में वृद्धि की गई है, और महिलाओं को स्वरोजगार के लिए ' 2 लाख तक की वित्तीय सहायता देने की घोषणा की गई है। ये पहल चुनावों से पहले विकास उपलब्धियों और सरकारी योजनाओं को उजागर करने के बड़े अभियान का हिस्सा हैं। हालांकि, विपक्ष के नेता तेजस्वी यादव ने इन कार्यों, जिनमें हाल ही में पूर्णिया एयरपोर्ट का उद्घाटन भी शामिल है, की आलोचना की है। उन्होंने इसे महागठबंधन द्वारा किए गए वादों की 'हड़बड़ी में की गई नक़ल' बताया है और 'असली सीएम' की ज़रूरत पर सवाल उठाया है। इसके जवाब में, सरकार का कहना है कि ये पहल वास्तव में पहले किए गए वादों को पूरा करने का प्रयास हैं। ●

डिजिटल निजता को संविधानिक संरक्षण

सुप्रीम कोर्ट ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में डिजिटल गोपनीयता को मौलिक अधिकार माना है, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत संरक्षित होगा। यह फैसला 'रायटी बनाम भारत सरकार' मामले में आया है, जिसमें याचिकाकर्ता ने डिजिटल डेटा संग्रह और निगरानी के दायरे को चुनौती दी थी। कोर्ट ने कहा कि तकनीकी युग में व्यक्तिगत डेटा की रक्षा करना नागरिकों की स्वतंत्रता से जुड़ा मसला है। इस निर्णय का सीधा असर डेटा संरक्षण कानून, डिजिटल निगरानी व्यवस्था और सरकार व निजी कंपनियों की डेटा नीतियों पर पड़ेगा। ●

करूर भगदड़: स्टार पावर और कुप्रबंधन का घातक मिश्रण

तमिलनाडु के करूर में अभिनेता और TVK अध्यक्ष विजय की रैली में 27 सितंबर को हुई भगदड़ में मरने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। भारत में अक्सर होने वाली इन त्रासदियों के पीछे एक जाना-पहचाना पैटर्न है। भीड़ से ज़्यादा, एक विशिष्ट ट्रिगर – जैसे कि लोगों का विजय की वैन के पीछे पेड़ से गिरना – घबराहट पैदा करता है, जिससे भगदड़ मच जाती है। बचाव प्रयासों में देरी से नुकसान बढ़ जाता है। दक्षिण भारत में फिल्म स्टारों के राजनीति में आने से रैलियों में भीड़ को नियंत्रित करना मुश्किल हो जाता है। करूर मामले में, शुरुआती रिपोर्टों से पता चलता है कि भीड़ के आकार के लिए अपर्याप्त योजना थी और कार्यक्रम में हुई देरी ने इस घातक भगदड़ में योगदान दिया। ●

श्रीराजेश, संपादक

अस्थिर दुनिया स्थिर भारत

वैश्विक परिदृश्य अभूतपूर्व अनिश्चितताओं और जोखिमों से घिरा है। आपूर्ति श्रृंखला, ऊर्जा, जलवायु, साइबर सुरक्षा और रूस-नाटो तनाव भारत की रणनीति और आत्मनिर्भरता को चुनौती दे रहे हैं।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य अभूतपूर्व अनिश्चितताओं और जटिल जोखिमों से घिरा हुआ है, जिनमें वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में विघटन, ऊर्जा सुरक्षा संकट, जलवायु परिवर्तन के विकराल प्रभाव, साइबर युद्ध और रूस-नाटो तनाव प्रमुख हैं। एस एंड पी ग्लोबल और ब्लैक रॉक जैसी शीर्ष संस्थाओं द्वारा रेखांकित ये चुनौतियाँ वैश्विक स्थिरता के साथ-साथ भारत जैसी तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी रणनीतिक अनिवार्यताएँ पैदा करती हैं। भारत को इन जोखिमों का सामना करने हेतु अपनी नीतियों और रणनीतियों को रणनीतिक स्वायत्तता और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों के अनुरूप गहनता से पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है।

पिछले कुछ वर्षों में, 'जस्ट-इन-टाइम' विनिर्माण मॉडल पर आधारित वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाएँ भू-राजनीतिक तनावों और महामारी के कारण चरमरा गई हैं। रूस-यूक्रेन युद्ध ने कच्चे माल की आपूर्ति को बाधित किया, जिससे वैश्विक मुद्रास्फीति बढ़ी। यह विघटन भारत के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती होने के साथ-साथ आत्मनिर्भरता का निर्णायक उत्प्रेरक भी है। सरकार 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान और पीएलआई योजनाओं के माध्यम से घरेलू विनिर्माण पर ज़ोर दे रही है, साथ ही 'फ्रेंड-शोरिंग' की अवधारणा पर विचार कर रही है ताकि विश्वसनीय आपूर्ति नेटवर्क स्थापित किए जा सकें। यह कदम राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक लचीलेपन दोनों के लिए आवश्यक है।

वैश्विक ऊर्जा बाजारों की अस्थिरता ने ऊर्जा सुरक्षा को राष्ट्रीय सुरक्षा का मुद्दा बना दिया है। रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद कच्चे तेल की कीमतों में वृद्धि ने भारत जैसे बड़े आयातक देशों पर भारी वित्तीय दबाव डाला। इस चुनौती के जवाब में, भारत ने अपनी ऊर्जा नीति में मौलिक बदलाव लाए हैं। सरकार ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों, विशेष रूप से सौर और पवन ऊर्जा पर भारी निवेश किया है, तथा हरित हाइड्रोजन मिशन शुरू किया है। रणनीतिक पेट्रोलियम भंडार का विस्तार और ऊर्जा दक्षता को बढ़ावा देना इस रणनीति के प्रमुख स्तंभ हैं। लक्ष्य स्पष्ट है: जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम करना और एक टिकाऊ व आत्मनिर्भर ऊर्जा भविष्य की ओर बढ़ना।

जलवायु परिवर्तन एक तात्कालिक और विनाशकारी वैश्विक खतरा है, जिसके प्रभाव भारत में अनियमित मानसून, बाढ़, सूखा और लू के रूप में तेज़ी से महसूस किए जा रहे हैं। यह भारत की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए गंभीर चुनौती है। सरकार ने इस खतरे को पहचानते हुए जलवायु अनुकूल नीतियाँ अपनाई हैं। राष्ट्रीय कार्य योजना जलवायु परिवर्तन (एनएपीसीसी) जैसी पहलें आपदा प्रबंधन, जल संरक्षण, और अनुकूलन रणनीतियों पर केंद्रित हैं। हालांकि, भारत विकसित देशों से 'जलवायु न्याय' और वित्तीय-

तकनीकी सहायता के लिए लगातार आह्वान करता रहा है।

तेजी से डिजिटलीकरण के साथ, साइबर हमले अब राष्ट्रीय सुरक्षा का अभिन्न अंग बन गए हैं। भारत का डिजिटल बुनियादी ढाँचा लगातार विदेशी अभिनेताओं द्वारा लक्षित किया जा रहा है। सरकार साइबर सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए CERT-In को मजबूत कर रही है और 'जीरो-ट्रस्ट' सुरक्षा मॉडल को अपनाने की दिशा में कदम बढ़ा रही है। डिजिटल इंडिया की सफलता हेतु एक अभेद्य साइबर सुरक्षा ढाँचा आवश्यक है।

रूस-नाटो के बीच गहराता तनाव वैश्विक शक्ति संतुलन को मौलिक रूप से प्रभावित कर रहा है। इस जटिल भू-राजनीतिक परिदृश्य में, भारत ने 'बहु-संरेखण' की नीति अपनाई है। भारत ने एक ओर रूस के साथ अपने ऐतिहासिक रक्षा और ऊर्जा संबंधों को बनाए रखा है, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी देशों के साथ भी अपने संबंधों को मजबूत किया है। क्वाड जैसे समूहों में सक्रिय भागीदारी और G20 जैसे बहुपक्षीय मंचों पर नेतृत्व की भूमिका भारत को वैश्विक शासन में एक महत्वपूर्ण और संतुलित आवाज प्रदान करती है।

निष्कर्षतः, 2025 में उभरे ये वैश्विक जोखिम भारत को आत्मनिर्भरता, ऊर्जा सुरक्षा, जलवायु अनुकूलन, डिजिटल सुरक्षा और संतुलित कूटनीति जैसे पहलुओं पर अपनी रणनीतियों को फिर से केंद्रित करने की आवश्यकता जताते हैं। इन चुनौतियों को एक जिम्मेदार और सामरिक रूप से लचीली महाशक्ति के रूप में भारत की भूमिका को स्थापित करने के अवसर के रूप में देखा जाना चाहिए।

srirajesh.journalist @srirajesh editor@cultcurrent.com

पानी पर दांव

अफगानी नहर बदलेगी यूरेशिया की किस्मत!

अनवर हुसैन

अक्सर हम वैश्विक शक्ति समीकरणों की बात करते हुए तेल के कुओं, गैस पाइपलाइनों या व्यापारिक गलियारों पर जोर देते हैं। लेकिन सोचिए, क्या कोई ऐसा संसाधन है जो इनसे भी कहीं अधिक मौलिक, जीवनदायी और देशों के भविष्य को तय करने वाला हो सकता है? जी हाँ, वह है पानी। यह सबसे बुनियादी संसाधन है, जो अब तेजी से यह निर्धारित कर रहा है कि क्षेत्र सहयोग की राह पर चलेंगे या संघर्ष की। यूरेशिया के भू-राजनीतिक मानचित्र पर इस बार पानी ने एक नया मोड़ ला दिया है, और इसके केंद्र में है अफगानिस्तान की महत्वाकांक्षी कोश टेपा नहर परियोजना।

यह परियोजना, जो काबुल द्वारा अमू दरिया नदी से महत्वपूर्ण जल धाराओं को मोड़ने के लिए चलाई जा रही है, अपने पड़ोसी मध्य एशियाई देशों में खतरे की घंटी बजा रही है। आश्चर्यजनक रूप से, अंतरराष्ट्रीय समुदाय का ध्यान इस गंभीर मुद्दे पर अभी तक काफी कम रहा है। यह चुप्पी भविष्य में एक बड़े संकट को जन्म दे सकती है।

कोश टेपा नहर: अफगानिस्तान के लिए जीवनरेखा, पड़ोसियों के लिए खतरा

जलवायु शोधकर्ता कामिला फैज़ियेवा बताती हैं कि कोश टेपा नहर 285 किलोमीटर लंबी एक विशाल परियोजना है। इसकी क्षमता उत्तरी अफगानिस्तान के बड़े भूभाग को सिंचित करने की **है। युद्ध और प्रतिबंधों** से जर्जर एक देश के लिए, यह परियोजना खाद्य सुरक्षा का वादा करती है – एक ऐसी उम्मीद जो अफगानिस्तान के लाखों लोगों के लिए जीवनरेखा साबित हो सकती है। कल्पना कीजिए, दशकों के संघर्ष

के बाद सूखे और गरीबी से जूझते किसानों को अपनी जमीन पर अनाज उगाने का अवसर मिले, तो यह उनके लिए कितना बड़ा बदलाव होगा।

लेकिन जो अफगानिस्तान के लिए जीवनदायिनी प्रतीत होती है, वह उज़्बेकिस्तान और तुर्कमेनिस्तान के लिए भारी उथल-पुथल ला सकती है। ये दोनों देश अमू दरिया के जल प्रवाह पर अत्यधिक निर्भर हैं। मध्य एशिया में पानी की कमी पहले से ही इतनी विकट है कि यह लोगों की आजीविका और क्षेत्र की स्थिरता के लिए खतरा बन गई है। ऐसे में, अमू दरिया के हर क्यूबिक मीटर पानी का हिसाब मायने रखता है। अफगान अधिकारी स्वाभाविक रूप से तर्क देते हैं कि उनकी आबादी को उस पानी से अनिश्चित काल तक वंचित नहीं रखा जा सकता जो तकनीकी रूप से उनके क्षेत्र से होकर बहता है। यह संप्रभुता का प्रश्न है।

जल विवादों का बढ़ता जाल: भारत-पाकिस्तान से इथियोपिया तक

यह तनाव कोई अनूठा नहीं है। जल विवाद यूरेशिया भर में एक सामान्य विशेषता बन गए हैं। दक्षिण एशिया में, सिंधु जल संधि भारत और पाकिस्तान के बीच एक नाजुक ढाँचा प्रदान करती है। इस संधि ने कई युद्धों और तनावों के बावजूद जल बंटवारे को बनाए रखा है, जो यह दर्शाता है कि सबसे कड़वे दुश्मन भी पानी जैसे महत्वपूर्ण संसाधन पर सहमत हो सकते हैं। बावजूद इसके, जल-राजनीतिक झड़पें अक्सर होती रहती हैं। भारत पर तो इस्लामाबाद के साथ अपने विवाद में बाढ़ को हथियार बनाने का भी आरोप लगता रहा है, जैसा कि मैंने पहले भी टिप्पणी की है। यह उदाहरण दर्शाता है कि जब विश्वास कम होता है और संधियाँ भी अधूरी रहती हैं, तो जल-संसाधन कितना संवेदनशील मुद्दा बन सकते हैं।

अफ़गानिस्तान का मामला इसलिए और भी नाजुक है क्योंकि, जैसा कि विश्लेषक सैयद फजल-ए-हैदर याद दिलाते हैं, ईरान (पश्चिम में) के साथ हेलमंद नदी पर एक संधि के अलावा, अमू दरिया बेसिन के संबंध में उसके उत्तरी पड़ोसियों के साथ कोई व्यापक, औपचारिक जल-साझेदारी समझौता नहीं है। सीमित सहयोग के बावजूद, काबुल अभी भी अल्माटी समझौते का हिस्सा नहीं है। जहाँ भारत और पाकिस्तान के पास कम से कम सिंधु जल संधि जैसा ढाँचा है, वहीं काबुल एक तरह के कानूनी शून्य में काम कर रहा है। यह फैज़ियेवा द्वारा नोट किए गए विरोधाभास को जन्म देता है: पानी की सबसे अधिक आवश्यकता वाला देश ही शासन तंत्र में सबसे कम एकीकृत है।

भू-राजनीतिक दांव और बाहरी हस्तक्षेप का खतरा

खतरा केवल पर्यावरणीय नहीं, बल्कि भू-राजनीतिक भी है। मध्य एशिया लंबे समय से रूसी, चीनी, तुर्की, ईरानी और पश्चिमी प्रभावों का एक जटिल मिश्रण रहा है। कोश टेपा परियोजना एक और 'फाड़ू मुद्दा' बनने का जोखिम रखती है, जिसका बाहरी अभिनेता फायदा उठा सकते हैं। इस क्षेत्र में अस्थिरता केवल रूस और चीन को ही नहीं, बल्कि वैश्विक ऊर्जा बाजारों, व्यापार गलियारों और यूरोप की सुरक्षा को भी प्रभावित करेगी। इसलिए, हालाँकि कोश टेपा नहर एक स्थानीय अफगान पहल लग सकती है, इसके दूरगामी प्रभाव यूरेशिया के भू-राजनीतिक समीकरणों को बदल सकते हैं।

सहयोग का रास्ता: एससीओ और बहुपक्षीय समाधान

इस पहेली में, क्षेत्रीय संस्थान आंशिक समाधान प्रस्तुत करते हैं। शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) वहाँ विवादों में मध्यस्थता के लिए सबसे स्पष्ट उम्मीदवार है। यह उन सभी प्रमुख अभिनेताओं – रूस, चीन, मध्य एशियाई गणराज्य, ईरान – को एक साथ लाता है जिनकी क्षेत्र की स्थिरता में सीधी हिस्सेदारी है। यदि अफगानिस्तान, जो अब एक पर्यवेक्षक देश है, को धीरे-धीरे इसमें एकीकृत किया जाता है, तो जल-साझेदारी के लिए एक ऐसा ढाँचा उभर सकता है जो क्षेत्रीय स्वामित्व वाला और भू-राजनीतिक रूप से तटस्थ हो।

अन्य पूरक ढाँचों पर भी विचार किया जा सकता है, जैसे अरल सागर को बचाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कोष (आईएफएएस) को पुनर्जीवित करना, द्विपक्षीय समझौते या यहाँ तक कि यूएनआरसीसीए वार्ता। इस्लामिक सहयोग संगठन (ओआईसी) भी एक प्रतीकात्मक भूमिका निभा सकता है। इस बीच, चीन की बेल्ट एंड रोड पहल (बीआरआई) जल-कुशल प्रौद्योगिकियों को निधि दे सकती है, जबकि सीएसटीओ को अपने एजेंडे में जल सुरक्षा को एकीकृत करने से लाभ होगा – और यूरेशियन इकोनॉमिक यूनियन (यूएईयू) को विशेष रूप से, क्योंकि कृषि और व्यापार सीधे प्रभावित होते हैं।

विनाशकारी विकल्प: एकतरफा कार्रवाई का खतरा

सहयोग के बिना विकल्प भयावह है। यदि सहयोग नहीं होता है, तो प्रत्येक देश पड़ोसियों की परवाह किए बिना एकतरफा 'जल-संप्रभुता' का पीछा कर सकता है, नहरें, बांध या मोड़ बना सकता है। अन्य बेसिनों में भी ऐसी ही स्थितियाँ मंडरा रही हैं: जैसा कि मैंने पहले भी नोट किया है, इथियोपिया

का ग्रैंड रेनेसां बांध मिस्र और सूडान के साथ तनाव का एक स्रोत बना हुआ है; तुर्की की GAP परियोजना ने बदले में निचले देशों को प्रभावित किया है। इसका परिणाम अक्सर खतरनाक वृद्धि होती है। यह सब दिखाता है कि जल संसाधनों का एकतरफा उपयोग कैसे क्षेत्रीय संघर्षों को जन्म दे सकता है।

तालिबान की चुनौती और कूटनीतिक अनिवार्यता

तालिबान, जो अंतरराष्ट्रीय वैधता की तलाश में है, के लिए कोश टेपा नहर एक महत्वपूर्ण परियोजना है। यह शासन, संप्रभुता और खाद्य सुरक्षा का संकेत देती है। मध्य एशिया के लिए अफगानिस्तान की दुर्दशा को नज़रअंदाज़ करना स्थायी नहीं है; फिर भी बिना शर्त रजामंदी भी स्वीकार्य नहीं है। संवाद ही एकमात्र वास्तविक विकल्प है; इसलिए तालिबान के साथ जुड़ना ही एकमात्र व्यावहारिक मार्ग है।

यह हमेशा जोर देना महत्वपूर्ण है कि जल विवाद स्थानीय नहीं रहते। पानी की कमी प्रवासन, आतंकवाद और राज्य के पतन को बढ़ावा दे सकती है। उदाहरण के लिए, कोई भी इस बात से इनकार नहीं करता कि सीरियाई संघर्ष पश्चिमी हस्तक्षेप से प्रेरित था – वास्तव में, अमेरिका, यूरोपीय शक्तियों और तुर्की ने आतंकवादियों सहित असद-विरोधी समूहों को हथियार दिए थे। फिर भी संकट आंशिक रूप से दरा जैसे स्थानों में लंबे सूखे से भी शुरू हुआ था। यह हमें याद दिलाना चाहिए कि जलवायु और पानी संघर्ष के गुणक हैं।

निष्कर्ष: जल-कूटनीति या जल-संघर्ष

संक्षेप में, जल-राजनीति अब भू-राजनीति की उपेक्षित बहन नहीं है – यह स्वयं भू-राजनीति है। अफगान नहर की गाथा इस बात पर प्रकाश डालती है कि पानी – वह तत्व जिसे सबसे अधिक सहजता से लिया जाता है – एक रणनीतिक चर बना हुआ है। इस संभावित फ्लैशपॉइंट को सहयोग के एक क्षेत्र में बदलने में सफल होना न केवल एक संकट को टालेगा बल्कि यह भी संकेत देगा कि यूरेशिया अपने स्वयं के लचीलेपन के तंत्र को और विकसित कर सकता है, जो पश्चिमी सहायता (जो अक्सर हस्तक्षेप के साथ जुड़ी होती है) के संदिग्ध उपहार से मुक्त होगा। किसी भी मामले में चुनाव जल-कूटनीति या जल-संघर्ष के बीच है। क्षेत्रीय अभिनेताओं को नहर के इतना अधिक चालू होने से पहले ही कार्य करना चाहिए कि बातचीत निरर्थक हो जाए। निवारक कूटनीति हमेशा संघर्ष प्रबंधन से सस्ती होती है।

यूरेशिया के लिए यह एक निर्णायक क्षण है। क्या वे इस पानी के मुद्दे को एक साझा भविष्य के लिए सहयोग का पुल बनाएंगे, या यह उनके संबंधों में एक और दरार पैदा कर देगा? भविष्य की स्थिरता और समृद्धि इसी प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करती है।

अनवर हुसैन वरिष्ठ पत्रकार एवं प्राध्यापक हैं।

अफ्रीका में संकट अक्सर सिर्फ राजनीति से शुरू नहीं होते। वे अक्सर पानी से शुरू होते हैं — बहुत कम, गंदा या असमान रूप से बाँटा हुआ। सूखा चरवाहों को उनकी जमीन से दूर कर देता है, बाढ़ बाजारों और स्कूलों को बहा लेती है, और इन दोनों परिस्थितियों में परिवार विस्थापन, भूख और संघर्ष के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। साहेल क्षेत्र में बारिश के पैटर्न बदलने से किसान और चरवाह टकरा चुके हैं; दक्षिणी अफ्रीका में शहरों में सूखे नल असंतोष और राशनिंग को जन्म देते हैं। हर उदाहरण एक सरल सच्चाई को रेखांकित करता हैः जब पानी विफल होता है, तो अर्थव्यवस्था और सामाजिक अनुबंध भी विफल हो जाते हैं।

यह अस्थिरता संरचनात्मक है। अफ्रीका की लगभग 95 प्रतिशत कृषि भूमि अब भी वर्षा-आश्रित है, जिससे फसलें मौसम की अनिश्चितताओं पर निर्भर हैं। अंतर-सरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (आईपीसीसी) चेतावनी देता है कि जल-सुरक्षा पर कई दिशाओं से दबाव बढ़ रहा है। यदि जल को योजना और निर्णयों के केंद्र में नहीं रखा गया, तो अनुकूलन असंभव होगा। मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि जब पानी को संरक्षित, व्यवस्थित और समान रूप से साझा किया जाता है, तो समुदाय अधिक लचीला बनता है।

फिर भी, इस अत्यावश्यकता के बावजूद, सब-सहारा अफ्रीका में लगभग आधे लोग अभी भी बुनियादी पीने के पानी से वंचित हैं। यह तथ्य हमारी प्राथमिकताओं को पुनः निर्धारित करने की आवश्यकता को दर्शाता है। पानी केवल मानवाधिकार नहीं है; यह विकास का आधारभूत ढांचा है, जो तय करता है कि खेतों में क्या उगाया जाता है, फैक्ट्री में क्या बनाया जाता है और स्कूलों में क्या पढ़ाया जाता है।

जब खेत सूख जाते हैं या नल खाली हो जाते हैं, तो सबसे अधिक प्रभाव परिवारों, विशेषकर महिलाओं और लड़कियों पर पड़ता है। यह प्रभाव केवल आंकड़ों में नहीं, बल्कि घण्टों की पैदल यात्रा, छोड़ी गई कक्षाओं और खोई हुई अवसरों में दिखता है। यूनिसेफ के अनुसार महिलाएँ और लड़कियाँ हर दिन लगभग 2 करोड़ घंटे पानी लाने में व्यतीत करती हैं, समय जो शिक्षा, कमाई या नेतृत्व में लगाया जा सकता था।

पाइप अकेले सम्मान नहीं लाते; लोग लाते हैं। जब समुदाय प्राथमिकताएँ तय करने में सहयोग करते हैं, शुल्क स्पष्ट होते हैं और उपयोगकर्ताओं की वास्तविक आवाज़ होती है, तभी कुशल, टिकाऊ और स्थायी सेवाएँ संभव होती हैं। नीति को दैनिक वास्तविकता से मेल खाना चाहिए। इसका अर्थ है स्थानीय जल परिस्थितियों के अनुकूल मानक, दीर्घकालीन रखरखाव के लिए बजट और समुदाय द्वारा सुलभ एवं भरोसेमंद जानकारी।

अफ्रीका पानी पर पलता भविष्य

सरीन मलिक

कुछ मॉडल काम करते हैं। वैश्विक विश्लेषणों से पता चलता है कि जल और स्वच्छता में निवेश किए गए प्रत्येक $1 से लगभग $4 का सामाजिक और आर्थिक लाभ मिलता है — समय की बचत, बेहतर स्वास्थ्य और उच्च उत्पादकता के रूप में।

नवाचार तब सबसे प्रभावी होता है जब वह संदर्भ में जड़ता है। छोटे पैमाने के फ़िल्ट्रेशन, लीकेज डिटेक्शन, सोलर पंपिंग और पानी के पुनः उपयोग जैसे साधन प्रशिक्षण और स्थानीय उद्यमों के साथ तेजी से फैल सकते हैं। फंडिंग पार्टनर, दानदाताओं और पुरस्कारों के माध्यम से प्रमाणित समाधानों को बड़े पैमाने पर लाया जा सकता है।

ऐसा ही एक मंच है जायेद सस्टेनाबिलिटी प्राइज, जो व्यावहारिक, स्केलेबल समाधानों को पहचानता है और लोगों को केंद्र में रखता है। मैं हाल ही में इसके जल श्रेणी चयन समिति में शामिल हुआ हूँ, और मैंने देखा कि यह पुरस्कार ऐसे समाधानों को बढ़ावा देता है जो नवाचारी और समावेशी दोनों हैं। 2025 में इसने स्काईजूस फाउंडेशन को सम्मानित किया, जिसने एक साधारण, बिजली रहित फ़िल्ट्रेशन सिस्टम के माध्यम से दूरदराज और पिछड़े समुदायों तक सुरक्षित पीने का पानी पहुँचाया। 2023 में पुरस्कार ने Eau et Vie (Better with Water) को सम्मानित किया, जिसने शहरी गरीब इलाकों में घरेलू नलों की व्यवस्था करके पानी की लागत कम की।

ये उदाहरण दिखाते हैं कि समावेशी प्रगति संभव है — लेकिन केवल तभी जब निर्णय निर्माता शब्दों के साथ कार्रवाई भी करें।

अब उन्हें क्या करना चाहिए?

सेवा को प्रतीकात्मकता से ऊपर रखें। ग्रामीण हैंडपंप के टूटने को शहर के पाइप फटने जितनी गंभीरता से देखें। प्रत्येक बजट लाइन ट्रेस करने योग्य हो, प्रत्येक अनुबंध पारदर्शी हो और प्रत्येक समुदाय यह देख सके कि क्या वादा किया गया और क्या प्रदान किया गया। वित्त केवल बने इंफ्रास्ट्रक्चर तक सीमित नहीं, बल्कि बचाए गए समय, रोके गए रोग और सुरक्षित फसल के आधार पर होना चाहिए।

सिविल सोसाइटी और स्थानीय सरकारों को अधिक सशक्त भूमिका दी जानी चाहिए। सार्वजनिक फोरम आयोजित किए जाने चाहिए, जहाँ यूटिलिटीज़, उपयोगकर्ता और नियामक एक ही स्कोरकार्ड के अनुसार निर्णय देखें और निवेश का मार्गदर्शन करें। खरीद नियमों को ऐसी तकनीकों को पुरस्कृत करना चाहिए जिन्हें स्थानीय तकनीशियनों द्वारा मरम्मत किया जा सके। कृषि में, केवल मेगा-डैम पर निर्भर रहने के बजाय, मिट्टी की नमी प्रबंधन, वर्षा जल संचयन और छोटे पैमाने की सिंचाई को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

जब सरकारें ये संकेत भेजें — स्थिर वित्त और राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ — कंपनियाँ वाटरशेड संरक्षण में सह-निधिकरण कर सकती हैं और नागरिकों को भरोसा होगा कि उनकी आवाज़ मायने रखती है। हर परियोजना की कसौटी सरल होनी चाहिएः क्या यह लड़कियों का समय बचाती है, बच्चों को स्वस्थ रखती है और रोजगार प्रदान करती है?

जल शासन और अवसंरचना को योजना बनाएं, नोट के रूप में नहीं। इसका अर्थ है सही जगहों पर जल भंडारण, बिना रिसाव वाले पाइप, सतत उपचार और प्रशिक्षित एवं वेतनभूत ऑपरेटर। जब सिस्टम काम करता है, स्वास्थ्य सुधरता है और स्थानीय समुदाय फलते-फूलते हैं। जब आप इस अवसंरचना को प्राथमिकता देंगे, तो सम्मान और समृद्धि अपने आप आएगी।

सरीन मलिक अफ्रीकन सिविल सोसाइटी नेटवर्क फॉर वाटर एंड सैनिटेशन की कार्यकारी सचिव, सैनिटेशन एंड वाटर फॉर ऑल की उपाध्यक्ष, सेंटर ऑफ इंटरप्रेन्योर फॉर वाटर एंड सैनिटेशन की सह-अध्यक्ष और स्टॉकहोम इंटरनेशनल वाटर इंस्टीच्यूट की बोर्ड सदस्य हैं। यह आलेख पहले अल जजीरा में प्रकाशित हुआ था और अब इसे कल्ट करंट में साभार प्रस्तुत किया जा रहा है। आलेख में व्यक्त विचार केवल लेखक के हैं और अनिवार्य रूप से कल्ट करंट की संपादकीय नीति का प्रतिबिंब नहीं हैं।

ड्रैगन से दोस्ती

मजबूरी या मास्टरस्ट्रोक?

संतोष कुमार

भारत और चीन के रिश्ते एक ऐसे रोमांचक मोड़ पर हैं, जहाँ एक तरफ सीमाओं पर तनाव की आग सुलग रही है, तो दूसरी तरफ अरबों डॉलर के व्यापार की डोर दोनों को बांधे हुए है। यह एक ऐसी कूटनीतिक कशमकश है, जहाँ अमेरिकी दबाव, दुनिया में बनती नई दोस्तियाँ-दुश्मनियाँ और हिंद-प्रशांत में सत्ता का खेल... सब एक साथ चल रहा है। इस तूफ़ानी माहौल में भारत एक कुशल नाविक की तरह अपनी संप्रभुता की नाव को बचाते हुए सहयोग और प्रतिस्पर्धा के बीच का एक सधा हुआ रास्ता तलाश रहा है।

अगस्त 2025 में, भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी शंघाई सहयोग संगठन (एसीओ) शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए चीन के तियानजिन शहर पहुँचे। यह 2020 की गलवान घाटी में हुई हिंसक झड़प और उसके बाद लंबे समय तक चले सैन्य गतिरोध के बाद प्रधानमंत्री मोदी का पहला चीन दौरा था। इस यात्रा के दौरान चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग और रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के साथ उनकी मुलाक़ात ने अंतरराष्ट्रीय सुर्खियाँ बटोरीं। कई विश्लेषकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि अमेरिकी टैरिफ और कूटनीतिक दबावों ने भारत को चीन के करीब धकेल दिया है।

लेकिन, यह व्याख्या स्थिति को बहुत ही सरल तरीके से देखती है। हकीकत इससे कहीं ज़्यादा जटिल है। चीन के साथ भारत का जुड़ाव किसी दबाव में की गई प्रतिक्रिया नहीं है; यह अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' को बनाए रखते हुए रिश्तों को स्थिर करने के एक सतत प्रयास का हिस्सा है। दोनों देशों के बीच जमी बर्फ पिघलने की शुरुआत 2024 में रूस के कज़ान में हुए ब्रिक्स शिखर सम्मेलन के दौरान ही हो गई थी, जहाँ 2019 के बाद पहली बार मोदी और शी के बीच एक सार्थक द्विपक्षीय चर्चा हुई। इसी बातचीत के परिणामस्वरूप वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) पर सैनिकों को पीछे हटाने पर एक औपचारिक समझौता हुआ, जिससे देपसांग और डेमचोक जैसे विवादित क्षेत्रों में तनाव कम हुआ।

राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के बीच आर्थिक निर्भरता

राजनीतिक तनावों के बावजूद, भारत और चीन के बीच व्यापार 100 अरब डॉलर से अधिक का है, जो दोनों देशों की आर्थिक निर्भरता को दर्शाता है। चीन आज भी भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है, लेकिन व्यापार संतुलन चीन के पक्ष में बहुत अधिक झुका हुआ है। यह असंतुलन भारत को व्यापार में विविधता लाने और संरचनात्मक सुधार करने के लिए प्रेरित कर रहा है।

इसी समय, भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ भी व्यापारिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। अगस्त 2025 में, ट्रंप प्रशासन ने भारत द्वारा रूस से तेल की निरंतर खरीद को एक प्रमुख चिंता बताते हुए भारतीय आयातों पर 50% का भारी टैरिफ लगा दिया। भारतीय नीति निर्माताओं ने इस कदम को एक दंडात्मक कार्रवाई के रूप में देखा, जिसने पश्चिमी और एशियाई, दोनों शक्तियों के प्रति अपनी रणनीति पर पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता को रेखांकित किया।

भारत की विदेश नीति का मूल मंत्र: रणनीतिक स्वायत्तता

भारत की विदेश नीति का मूल दर्शन 'रणनीतिक स्वायत्तता' है—यानी, एक बहुध्रुवीय दुनिया में किसी एक वैश्विक शक्ति पर अत्यधिक निर्भर हुए बिना स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता। इस संदर्भ में, चीन के साथ भारत का जुड़ाव वैचारिक नहीं, बल्कि पूरी तरह से व्यावहारिक है।

भारत जहाँ आर्थिक और क्षेत्रीय सुरक्षा जैसे मुद्दों पर सहयोग चाहता है, वहीं वह सीमा क्षेत्रों, दक्षिण चीन सागर और बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) जैसी पहलों के माध्यम से चीन की आक्रामकता को लेकर सतर्क भी रहता है। क्वाड (भारत, अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया) जैसे बहुपक्षीय मंचों में भारत की भागीदारी, चीन के प्रभाव को सीधे टकराव के बिना संतुलित करते हुए, एक स्वतंत्र और खुले हिंद-प्रशांत क्षेत्र के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

एक संतुलित दृष्टिकोण: व्यावहारिकता, निर्भरता नहीं

भारत की रणनीति एक सिद्धांत को स्पष्ट करती है: जुड़ाव का मतलब निर्भरता नहीं है। जहाँ व्यापार, जलवायु परिवर्तन और बहुपक्षीय मंचों पर सहयोग फायदेमंद है, वहीं भारत चीन पर अत्यधिक निर्भरता से बचता है। यह दृष्टिकोण भारत को बातचीत में अपना लाभ बनाए रखने, अपनी संप्रभुता की रक्षा करने और वैश्विक शक्तियों से किसी भी संभावित दंडात्मक कार्रवाई के जोखिम को कम करने की अनुमति देता है।

साथ ही, चीन भी अपनी आंतरिक चुनौतियों का सामना कर रहा है। धीमी होती अर्थव्यवस्था, पश्चिमी बाजारों का दबाव और रूस को समर्थन देने पर बढ़ती जांच जैसे कारक बीजिंग को भारत के साथ बातचीत और विश्वास-बहाली के उपायों के लिए अधिक ग्रहणशील बनाते हैं। दोनों देशों का आपसी हित क्षेत्रीय स्थिरता बनाए रखने, सैन्य टकराव से बचने और एक प्रतिस्पर्धी माहौल में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में निहित है।

निष्कर्ष: रस्सी पर संतुलन साधने की कला

चीन के प्रति भारत का दृष्टिकोण वैश्विक भू-राजनीति की एक सूक्ष्म समझ को दर्शाता है। देश जुड़ाव और प्रतिरोध, सहयोग और प्रतिस्पर्धा के बीच एक नाजुक संतुलन साध रहा है। जहाँ आर्थिक संबंध और क्षेत्रीय स्थिरता बातचीत के कारण प्रदान करते हैं, वहीं राष्ट्रीय सुरक्षा और रणनीतिक स्वायत्तता ऐसे मुद्दे हैं जिन पर कोई समझौता नहीं हो सकता।

संक्षेप में, भारत चीन पर निर्भर नहीं होना चाहता। इसके बजाय, वह सतर्क जुड़ाव का एक व्यावहारिक मार्ग अपना रहा है, जिसमें वह कूटनीति, व्यापार और बहुपक्षीय मंचों का लाभ उठाकर अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करता है और साथ ही पारस्परिक रूप से लाभकारी सहयोग की संभावनाएं भी तलाशता है। जैसे-जैसे वैश्विक समीकरण बदलते रहेंगे, भारत का यह सधा हुआ दृष्टिकोण उसकी रणनीतिक दूरदर्शिता का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो यह सुनिश्चित करता है कि वह अपनी स्वतंत्रता से समझौता किए बिना एशिया में एक निर्णायक शक्ति बना रहे।

वैश्विक व्यापार में अमेरिकी बवंडर

भारत बनेगा आसियान का संकटमोचक?

अमेरिका की हाल की व्यापार नीतियों ने वैश्विक बाजारों में भूचाल ला दिया है, जिससे आसियान संकट के मोड़ पर खड़ा है। बढ़ते टैरिफ और आपूर्ति श्रृंखला के जोखिमों के बीच, भारत एक रणनीतिक जीवनरेखा के रूप में उभरता है। यह आलेख भारत-आसियान सहयोग के अवसरों और स्थिरता पर प्रकाश डालता है।

विश्व की आर्थिक बिसात पर एक नया भूचाल आया है। अमेरिका की 'ट्रंपियन' व्यापार नीतियों ने एक ऐसा बवंडर खड़ा कर दिया है, जिसकी चपेट में दुनिया के कई देश आ गए हैं। इस तूफान के केंद्र में दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों का संगठन (आसियान) भी है, जो दशकों से अपनी आर्थिक स्थिरता और विकास के लिए जाना जाता रहा है। अमेरिका द्वारा लगाए गए भारी-भरकम आयात शुल्कों (टैरिफ) की तलवार आसियान के सिर पर लटक रही है, जिससे उसके समृद्ध निर्यात बाजार के सामने एक बड़ा संकट खड़ा हो गया है।

ऐसे में आसियान एक दोराहे पर है। उसके सामने चुनौती सिर्फ अपने सबसे बड़े व्यापारिक साझेदारों में से एक को खोने की नहीं, बल्कि वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में अपनी स्थिति को बचाए रखने की भी है। इस संकट की घड़ी में, जब पुराने रास्ते बंद हो रहे हों, तो नए रास्ते तलाशना ही बुद्धिमानी है। और यही वह मोड़ है, जहाँ भारत, आसियान के लिए एक रणनीतिक जीवनरेखा और एक विश्वसनीय भागीदार के रूप में उभर सकता है।

टैरिफ का चौतरफा दबाव और आसियान का असमंजस

आसियान और अमेरिका के बीच व्यापारिक संबंध बेहद गहरे रहे हैं। 2024 में यह व्यापार 571.7 बिलियन डॉलर के आंकड़े को पार कर गया था। लेकिन अमेरिका के विशाल व्यापार घाटे को कम करने की अपनी मुहिम के तहत, ट्रंप प्रशासन ने आसियान देशों पर भी भारी टैरिफ लगा दिए हैं। कंबोडिया पर 36%, वियतनाम पर 20%, इंडोनेशिया पर 19% और थाईलैंड पर 36% जैसे शुल्क इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्थाओं के लिए एक बड़े झटके से कम नहीं हैं।

इस अप्रत्याशित कदम ने आसियान को एक अजीब असमंजस में डाल दिया है। एक तरफ, संगठन ने सामूहिक एकता दिखाते हुए इन टैरिफ का विरोध किया है। लेकिन दूसरी ओर, अपने आर्थिक हितों को बचाने के लिए वियतनाम, इंडोनेशिया और फिलीपींस जैसे देशों ने अमेरिका के साथ अलग से द्विपक्षीय समझौते भी किए हैं। यह स्थिति आसियान की दोहरी रणनीति को दर्शाती है—सामूहिक रूप से मजबूत दिखना, लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर नुकसान कम करने की कोशिश करना।

चीन का कोण: अवसर या एक और चुनौती?

पहली नजर में ऐसा लग सकता है कि अमेरिका-चीन व्यापार युद्ध आसियान के लिए एक अवसर है। जब अमेरिका चीनी सामानों पर टैरिफ लगाएगा, तो अमेरिकी खरीदार स्वाभाविक रूप से आसियान जैसे वैकल्पिक बाजारों की ओर रुख करेंगे। विश्व बैंक के एक विश्लेषण में भी यह बात सामने आई है कि व्यापार के इस डायवर्जन से आसियान को बाजार हिस्सेदारी में फायदा हो सकता है।

लेकिन यह तस्वीर इतनी सीधी नहीं है। आसियान की अर्थव्यवस्थाएं अपनी आपूर्ति श्रृंखला के लिए चीन पर बहुत गहराई से निर्भर हैं। वे चीन से कच्चा माल और मध्यवर्ती उत्पाद आयात करते हैं, उन्हें तैयार माल में बदलते हैं और फिर दुनिया भर में निर्यात करते हैं। अगर चीन की लागत बढ़ती है, तो आसियान के उत्पादों की लागत भी बढ़ेगी, जिससे उनकी प्रतिस्पर्धात्मकता कम हो जाएगी। यह एक दोधारी तलवार है, जहाँ फायदा दिखने के साथ-साथ एक छिपा हुआ जोखिम भी है।

उम्मीद की किरण: भारत क्यों है आसियान के लिए एक रणनीतिक दांव?

जब आसियान के पारंपरिक बाजार अस्थिर हो रहे हों और चीन पर निर्भरता जोखिम भरी लग रही हो, तो उसे एक ऐसे भागीदार की तलाश है जो स्थिर, विशाल और विश्वसनीय हो। इन सभी पैमानों पर भारत खरा उतरता है। आसियान-भारत व्यापार समझौता इस संकट को अवसर में बदलने की कुंजी साबित हो सकता है।

1. **एक विशाल और बढ़ता बाजार:** भारत दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। यहाँ एक विशाल मध्यम वर्ग है जिसकी क्रय शक्ति लगातार बढ़ रही है। आसियान के निर्यातक इस बढ़ती मांग का लाभ उठा सकते हैं, जो अमेरिकी बाजार में होने वाले नुकसान की भरपाई करने में मदद करेगा।
2. **पूरक अर्थव्यवस्थाएं:** भारत और आसियान की अर्थव्यवस्थाएं एक-दूसरे की प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि पूरक हैं। भारत को इलेक्ट्रॉनिक्स, मशीनरी और ऑटो पार्ट्स की जरूरत है, जिन्हें आसियान देश कुशलता से बनाते हैं। वहीं, भारत सेवा क्षेत्र, फार्मास्यूटिकल्स और कृषि उत्पादों में मजबूत है, जिनकी आसियान में मांग है। यह एक स्वाभाविक व्यापारिक साझेदारी का आधार बनता है।
3. **लचीली आपूर्ति श्रृंखला का निर्माण:** कोविड-19 महामारी और भू-राजनीतिक तनावों ने दुनिया को सिखाया है कि किसी एक देश (विशेषकर चीन) पर निर्भर रहना कितना खतरनाक हो सकता है। भारत और आसियान दोनों ही अपनी आपूर्ति श्रृंखलाओं में विविधता लाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। मिलकर, वे एक ऐसी लचीली और विश्वसनीय आपूर्ति श्रृंखला बना सकते हैं जो वैश्विक झटकों का सामना कर सके।
4. **मौजूदा मुक्त व्यापार समझौता (FTA):** सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आसियान और भारत के बीच पहले से ही एक मुक्त व्यापार समझौता मौजूद है। इसे केवल और अधिक प्रभावी बनाने और गहरा करने की जरूरत है। सेवाओं और निवेश जैसे क्षेत्रों में समझौते को उन्नत करके दोनों पक्ष अपने आर्थिक संबंधों को नई ऊंचाइयों पर ले जा सकते हैं।

निष्कर्ष: भविष्य की राह

अमेरिकी टैरिफ ने वैश्विक व्यापार के नियमों को बदल दिया है। इस नई दुनिया में रहने के लिए आसियान को साहस और दूरदर्शिता दिखानी होगी। उसे अपने आंतरिक बाजार को मजबूत करने, एक ब्लॉक के रूप में सौदेबाजी करने और नए बाजारों की सक्रियता से तलाश करने की जरूरत है।

चीन एक महत्वपूर्ण भागीदार बना रहेगा, लेकिन उस पर अत्यधिक निर्भरता अब एक रणनीतिक भूल होगी। ऐसे में, भारत के साथ व्यापारिक संबंधों को गहरा करना आसियान के लिए सिर्फ एक विकल्प नहीं, बल्कि एक अनिवार्यता है। यह न केवल मौजूदा अमेरिकी व्यवधानों के खिलाफ एक सुरक्षा कवच प्रदान करेगा, बल्कि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में विकास और स्थिरता का एक नया इंजन भी तैयार करेगा। यह एक ऐसा ऐतिहासिक अवसर है, जिसे दोनों पक्षों को पूरी दृढ़ता से पकड़ना चाहिए, क्योंकि इसे गंवाना भविष्य के लिए एक बड़ी भूल होगी।

प्रेत युद्ध

अमेरिका का भ्रम

जलज श्रीवास्तव

अमेरिका ने चीन को हमेशा एक अस्तित्वगत खतरे के रूप में पेश किया है—एक उभरती शक्ति जो विश्व व्यवस्था को चुनौती देने को तैयार है। लेकिन हकीकत में चीन केवल अपने भीतर केंद्रित है। वाशिंगटन की भयपरक नीतियाँ अनावश्यक टकराव और संसाधनों की बर्बादी को बढ़ा रही हैं, जैसे कि एक काल्पनिक दुश्मन से लड़ रहे हों।

वाशिंगटन के नीति-निर्माण के गलियारों में आजकल एक बात पत्थर की लकीर मानी जाती है: चीन अमेरिका को हटाकर दुनिया की सबसे बड़ी महाशक्ति बनना चाहता है और आक्रामक रूप से अपने क्षेत्र का विस्तार करने पर तुला है। डेमोक्रेट्स और रिपब्लिकन दोनों इस पर एकमत हैं, और इसी आम सहमति ने अमेरिका की चीन नीति को आकार दिया है, जो अब युद्ध की तैयारियों, सैन्य प्रतिरोध और आर्थिक 'डीकपलिंग' (संबंध विच्छेद) पर केंद्रित है।

लेकिन क्या हो अगर यह पूरी समझ ही गलत हो? क्या हो अगर अमेरिका एक ऐसे दुश्मन की कल्पना करके अपनी सारी ऊर्जा झोंक रहा हो, जिसका वास्तविकता में कोई अस्तित्व ही नहीं है?

अगर हम ध्यान से देखें कि चीन क्या कहता है और क्या चाहता है, तो एक बिल्कुल अलग तस्वीर उभरती है। चीन एक विस्तारवादी ताकत नहीं है जो दुनिया के नक्शे को फिर से खींचना चाहती हो, बल्कि वह एक 'यथास्थितिवादी' शक्ति है जिसके वैश्विक लक्ष्य सीमित हैं। चीन के नेता बाहरी विस्तार से कहीं ज़्यादा अपनी आंतरिक चुनौतियों और शासन की स्थिरता पर केंद्रित हैं। हाँ, उसकी विदेश नीति की माँगें हैं और वह अक्सर अपने पड़ोसियों पर धौंस जमाता है, लेकिन वह उन पर आक्रमण करने या उन्हें जीतने की कोशिश नहीं करता। वह उन क्षेत्रों पर अपने नियंत्रण को लेकर बेहद संवेदनशील है जिन्हें बाकी दुनिया ने, कम से-कम कूटनीतिक रूप से, चीनी माना है—हाँगकाँग, ताइवान, तिब्बत और शिनजियांग। लेकिन चीन की महत्वाकांक्षाएँ शायद ही इससे आगे जाती हैं।

यदि चीन एक सीमित लक्ष्यों वाली यथास्थितिवादी शक्ति है, न कि अमेरिकी प्रभुत्व के लिए एक गंभीर खतरा, तो अमेरिका दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण द्विपक्षीय संबंध में गलत दृष्टिकोण अपना रहा है। वाशिंगटन का सैन्य प्रतिरोध और युद्ध की तैयारी पर ज़ोर ठीक उसी तरह के सैन्य टकराव का जोखिम पैदा कर रहा है, जहाँ इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। चीन को एक खतरनाक खतरे के रूप में देखने के बजाय, अमेरिका को चीन के मूल हितों को समझने की ज़रूरत है ताकि वह जान सके कि चीन कहाँ समझौता करने को तैयार हो सकता है और कहाँ नहीं।

चीन क्या चाहता है? उसकी अपनी ज़ुबानी सुनिए

यह समझने का सबसे अच्छा तरीका है कि चीन क्या चाहता है, यह सुनना है कि उसके नेता, पत्रिकाएँ और मीडिया क्या कहते हैं। हालाँकि कई पर्यवेक्षक सार्वजनिक बयानों को महज़ प्रचार या सस्ती बातें कहकर खारिज कर देते हैं, लेकिन यह मानने के अच्छे कारण हैं कि चीन जो कहता है, उसका वही मतलब होता है।

चीन ने अपने मूल हितों को स्पष्ट और लगातार बताया है। शी जिनपिंग के सत्ता में आने से पहले, सितंबर 2011 में, बीजिंग ने अपना पहला आधिकारिक विदेश नीति श्वेत पत्र प्रकाशित किया था जिसमें चीन के मूल हितों को परिभाषित किया गया था। इनमें शामिल थेः आंतरिक राजनीतिक स्थिरता, राष्ट्रीय संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (CCP) की प्रधानता, और आर्थिक तथा सामाजिक विकास। शी के शासन में भी, पार्टी के मूल हित नहीं बदले हैं।

चीन के अपने और अपने हितों के वर्णन में जो बात काफी हद तक अनुपस्थित है, वह है वैश्विक या यहाँ तक कि क्षेत्रीय नेता बनने की कोई भव्य महत्वाकांक्षा। 2021 में CCP की स्थापना की 100वीं वर्षगांठ पर एक प्रमुख भाषण में, शी ने चीनी आधिपत्य या वैश्विक नेतृत्व का आह्वान नहीं किया। विदेश नीति का एकमात्र उल्लेख विदेशों में आक्रामक कार्रवाइयों के प्रति चीन के विरोध को दोहराना था।

शी और अन्य चीनी नेता अक्सर वैश्विक शासन में चीन की बड़ी भूमिका का आह्वान करते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि चीन अमेरिका को प्रमुख वैश्विक शक्ति के रूप में प्रतिस्थापित करना चाहता है। शी का हालिया 'वैश्विक शासन पहल' का प्रस्ताव स्पष्ट है कि यह संयुक्त राष्ट्र-आधारित अंतरराष्ट्रीय प्रणाली को उलटने के बजाय उसे संरक्षित करना चाहता है। न ही चीन इन संस्थानों का एकमात्र प्रभारी बनना चाहता है। इसके बजाय, चीन स्पष्ट है—और शीत युद्ध की शुरुआत से ही रहा है—कि लक्ष्य बहुपक्षवाद है।

चीन की वैश्विक कार्रवाइयों का उद्देश्य आर्थिक विकास और राजनीतिक प्रभाव दोनों को बढ़ावा देना है, लेकिन ये अंतरराष्ट्रीय प्रयास आंतरिक रूप से लक्षित हैं और घरेलू मुद्दों से उपजे हैं। उदाहरण के लिए, चीन ने 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' (BRI) की शुरुआत बुनियादी ढाँचे के निर्माण से जुड़े उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता को कम करने के लिए की थी। चीनी नेता BRI को चीन के विकास और शासन मॉडल के लिए अंतरराष्ट्रीय समर्थन बनाने के एक उपकरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं—लेकिन लक्ष्य चीनी मूल्यों का प्रसार करना या अन्य देशों को चीन की राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना नहीं है।

इतिहास की गवाही: ताइवान, तिब्बत और सीमा विवाद

चीन के क्षेत्रीय दावों को समझने के लिए इतिहास में झाँकना ज़रूरी है। ताइवान पर उसका दावा कोई नई बात नहीं है। यह मुद्दा 19वीं सदी से चला आ रहा है, जब किंग राजवंश ने जापान के हाथों ताइवान को खो दिया था। तब से, चीन के हर शासक ने ताइवान को एक खोया हुआ क्षेत्र माना है जिसे पुनः प्राप्त किया जाना चाहिए। यह दावा ताइवान के सेमीकंडक्टर कारखानों या उसके रणनीतिक स्थान से बहुत पहले का है। चीनी नेता ताइवान के साथ एकीकरण तब भी चाहेंगे जब इसका कोई सैन्य या आर्थिक मूल्य न हो।

चीन की अन्य क्षेत्रीय चिंताएँ भी कम से-कम एक सदी पुरानी हैं। हाँगकाँग और मकाऊ, जो क्रमशः ब्रिटिश और पुर्तगाली औपनिवेशिक शासन के अधीन थे, 1990 के दशक के अंत में चीन को वापस कर दिए गए। तिब्बत और शिनजियांग पर चीन का शासन किंग राजवंश के समय का है।

इसके विपरीत, पूर्वी चीन और दक्षिण चीन सागर पर नियंत्रण चीन के लिए कम महत्वपूर्ण रहा है। समुद्री दावों पर विवाद स्थायी चीनी दावों के बजाय बीसवीं शताब्दी की पहली छमाही की अराजकता में निहित हैं। चीन की तथाकथित 'नाइन-डैश लाइन', जिसे वह दक्षिण चीन सागर में अपने दावों का सीमांकन करने के लिए उपयोग करता है, का मूल 1948 में प्रकाशित एक नक्शे में है। लेकिन चीन ने अपने पड़ोसियों के साथ सीमा विवादों को सुलझाने में लचीलापन

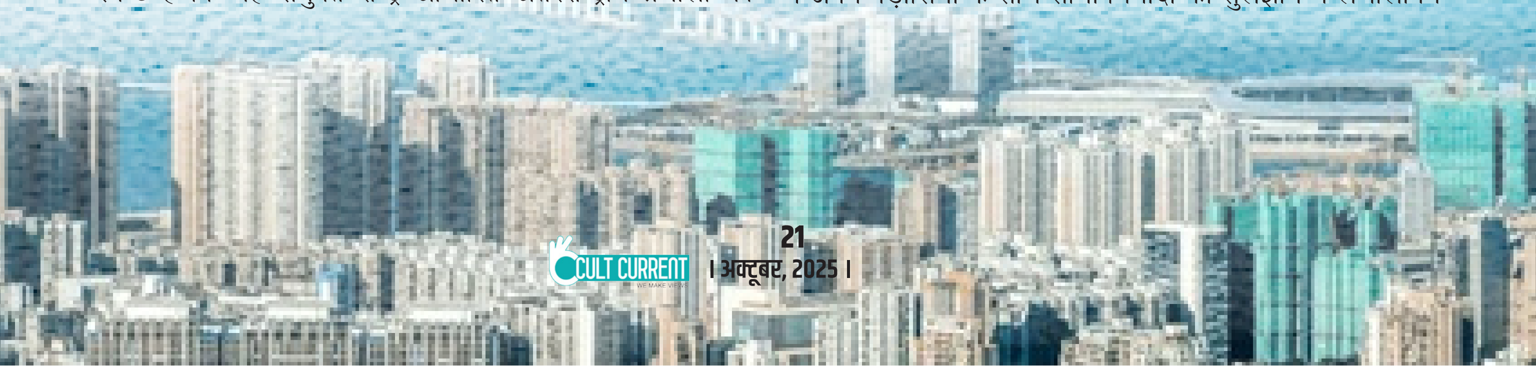

भी दिखाया है। उदाहरण के लिए, उसने उत्तरी वियतनाम के साथ संबंधों को बेहतर बनाने के लिए इस लाइन के कुछ हिस्सों को हटा दिया था।

चीन ने अक्सर विवादित क्षेत्र को छोड़कर दावों को निपटाने और दृढ़ सीमाएँ स्थापित करने के लिए सहमति दी है, जब उसके मूल हित दांव पर नहीं होते। उत्तरी कोरिया के साथ विवादों को निपटाने के लिए, उदाहरण के लिए, 1962 और 1964 में चीन ने माउंट बेकडू की चोटी और पास के 500 वर्ग किलोमीटर से अधिक क्षेत्र को छोड़ दिया। चीन और वियतनाम ने 1999 और 2000 में अपनी सीमाओं को संहिताबद्ध करने वाले द्विपक्षीय संधियों पर हस्ताक्षर किए।

उद्देश्य से वर्तमान नीतियाँ एक ऐसे विस्तारवादी शक्ति से निपटने के लिए डिज़ाइन की गई हैं जो अमेरिका को विस्थापित करना चाहती है और आक्रामक रूप से अपने क्षेत्र का विस्तार करना चाहती है। लेकिन ये नीतियाँ एक ऐसे देश के साथ जुड़ने में बहुत कम काम करेंगी जो यथास्थिति को बनाए रखने और अपनी आंतरिक स्थिरता को बनाए रखने पर कहीं ज़्यादा केंद्रित है।

इसका मतलब है कि प्रशांत क्षेत्र में अमेरिकी सैन्य जमावड़ा अनावश्यक और उल्टा है। यह कम-संभावना वाली आकस्मिकताओं की तैयारी में संसाधनों को बर्बाद करता है, जो लंबी अवधि में अमेरिकी सैन्य ताकत को कमजोर करता है। यह चीन के साथ तनाव कम करने के बजाय उसे बढ़ाने की संभावना को भी बढ़ाता है।

अमेरिका की गलतफहमी और भारत के लिए सबक

चूंकि वाशिंगटन ने यह गलत समझा है कि चीन क्या चाहता है, इसलिए चीन के प्रति अमेरिकी नीति गलत दिशा में चली गई है। चीन को राजनयिक और आर्थिक रूप से अलग-थलग करने के

ताइवान की भविष्य की स्थिति को आकार देने के लिए बल का उपयोग करने की कोशिश करना और भी ज़्यादा गुमराह करने वाला है। चूँकि ताइवान पर चीन के दावे वैचारिक और ऐतिहासिक हैं, न कि विशुद्ध रूप से रणनीतिक, इसलिए प्रतिरोध का प्रयास उकसाने की अधिक संभावना रखता है। लक्ष्य यथास्थिति को बनाए रखना होना चाहिए, जिसने पिछले चार दशकों से काम किया है।

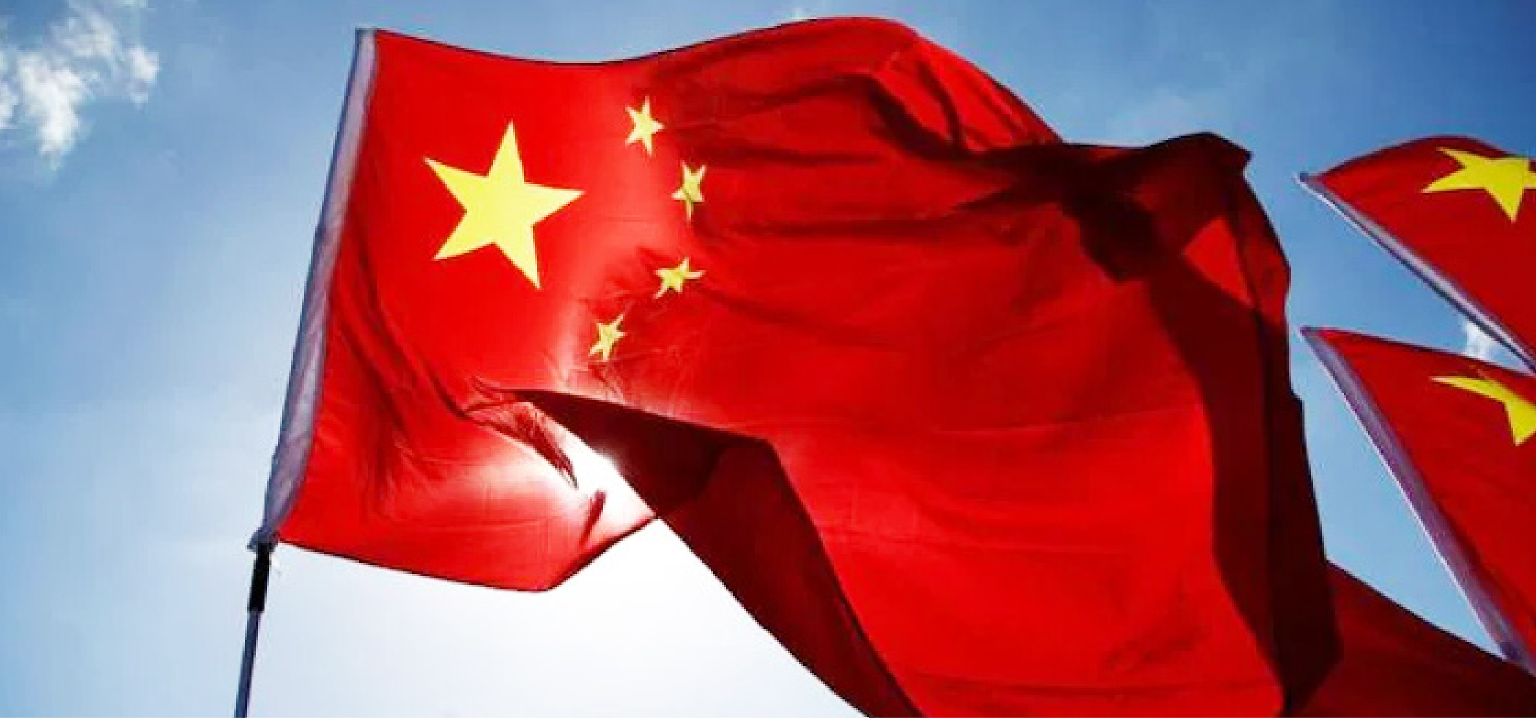

भारत के लिए इसमें गहरे सबक छिपे हैं। अमेरिकी नीति की नकल करने और चीन को एक अस्तित्व के खतरे के रूप में देखने के बजाय, भारत को चीन को उसकी अपनी शर्तों पर समझना चाहिए। चीन भारत के लिए एक प्रतियोगी है, एक पड़ोसी है जिसके साथ गहरे ऐतिहासिक और आर्थिक संबंध हैं, लेकिन साथ ही सीमा पर तनाव भी है। उसे एक ऐसे दुश्मन के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए जो भारत को निगल जाना चाहता है।

भारत की चीन नीति को यथार्थवाद पर आधारित होना चाहिए, न कि पश्चिमी भय पर। इसका मतलब है:

सैन्य संतुलन, लेकिन अनावश्यक टकराव से बचाव: भारत को अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए सैन्य रूप से मजबूत रहना होगा, लेकिन उसे चीन के साथ एक अनियंत्रित हथियारों की दौड़ में शामिल होने से बचना चाहिए। कूटनीति और संवाद हमेशा प्राथमिकता होनी चाहिए।

आर्थिक जुड़ाव, लेकिन निर्भरता से बचाव: चीन भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार बना रहेगा। इस रिश्ते को तोड़ने की कोशिश अव्यावहारिक होगी। इसके बजाय, भारत को व्यापार घाटे को कम करने, अपनी आपूर्ति श्रृंखलाओं में विविधता लाने और चीनी निवेश के लिए स्पष्ट नियम बनाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

बहुपक्षीय मंचों का उपयोग: भारत को ब्रिक्स, एससीओ और जी-20 जैसे मंचों का उपयोग चीन के साथ संवाद बनाए रखने और आपसी हित के क्षेत्रों में सहयोग करने के लिए करना चाहिए। यह चीन के प्रभाव को संतुलित करने और भारत के अपने हितों को आगे बढ़ाने का एक प्रभावी तरीका है।

भारत की अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' को बनाए रखना: सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत को किसी भी बाहरी शक्ति के दबाव में आए बिना अपनी विदेश नीति तय करनी चाहिए। न तो उसे अमेरिका के नेतृत्व वाले चीन-विरोधी गुट में शामिल होना चाहिए, और न ही चीन के आधिपत्य को स्वीकार करना चाहिए। भारत का रास्ता उसका अपना होना चाहिए।

निष्कर्ष: एक समझदार प्रतियोगी, न कि एक अकल्पनीय खतरा

चीन के साथ प्रभावी ढंग से निपटने के लिए चीन को वैसे ही समझने की आवश्यकता है जैसा वह वास्तव में है, न कि उस चीन की जिसे अमेरिकी नीति निर्माताओं ने कल्पना की है और तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया है। यह महसूस करना कि चीन के उद्देश्य अधिकांश नीति निर्माताओं के विश्वास से कहीं कम विस्तारवादी, टकरावपूर्ण या अमेरिकी (और भारतीय) हितों के लिए खतरनाक हैं, न तो अवास्तविक है और न ही चीन के प्रति अनुचित रूप से सहानुभूतिपूर्ण।

चीन दुनिया को—और खुद को—बता रहा है कि वह क्या चाहता है। यदि वाशिंगटन और नई दिल्ली चीन के साथ प्रभावी ढंग से निपटना चाहते हैं, तो उन्हें ध्यान से सुनना अच्छा होगा। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा प्रौद्योगिकी, व्यापार और यहाँ तक कि शिक्षा में भी दोनों पक्षों के लिए अच्छी हो सकती है, बिना इस डर से प्रेरित प्रतिक्रियाओं के कि दूसरा पक्ष एक अस्तित्व का खतरा है। भारत को चीन को एक समझदार प्रतियोगी के रूप में देखना चाहिए, न कि एक अकल्पनीय राक्षस के रूप में, और अपनी नीतियों को इसी यथार्थवादी समझ के आधार पर बनाना चाहिए।

अमेरिका की जुआरी चाल

अनिरुद्ध यादव

म्यांमार के काचीन में 'रेयर अर्थ' खनिजों की जंग अब अमेरिका-चीन की दुश्मनी का नया अखाड़ा बन गई है। बीजिंग को चोट पहुँचाने के लिए वाशिंगटन स्थानीय विद्रोहियों को मोहरे की तरह इस्तेमाल कर रहा है। यह एक खतरनाक दांव है जो इतिहास की गलतियों को दोहराकर इस भूले हुए युद्धक्षेत्र को सुलगा सकता है।

अधिकांश अमेरिकी शायद ही नक्शे पर म्यांमार को ढूँढ पाएँगे, और उसके बीहड़, उत्तरी राज्य काचीन की तो बात ही छोड़ दीजिए। फिर भी, चीन और भारत के बीच फँसा यह पहाड़ी सीमांत क्षेत्र एक बार फिर से एक भू-राजनीतिक आकर्षण का केंद्र बन गया है। वाशिंगटन के रणनीतिकारों के लिए, यह एक सुनहरे अवसर की तरह चमक रहा है—एक ऐसा अस्थिर चौराहा जहाँ पुराने गठबंधन, बेशकीमती खनिज और चीन की कमजोरियाँ एक साथ मिलती हैं। लेकिन इतिहास की थोड़ी भी समझ रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए, यह एक डरावनी याद भी दिलाता है कि कैसे अमेरिका दूसरों के युद्धों में उतरने, जटिल स्थानीय गतिशीलता को गलत समझने, और अपने वादों से कहीं ज़्यादा स्थायी मलबा पीछे छोड़ने की प्रवृत्ति रखता है।

यह काचीन में अमेरिका का पहला दांव नहीं है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, सीआईए के पूर्ववर्ती, ऑफ़िस ऑफ़ स्ट्रैटेजिक सर्विसेज़ ने घने बर्मी जंगलों में जापानी सेना को परेशान करने के लिए काचीन लड़ाकों के साथ एक व्यावहारिक गठबंधन बनाया था। इन दृढ़, बेतरतीब योद्धाओं, जिन्हें बाद में 'काचीन रेंजर्स' के रूप में अमर कर दिया गया, ने अनुभवहीन अमेरिकी सैनिकों के लिए आँख और कान का काम किया, जो उनके मार्गदर्शन के बिना उस इलाके में शायद ही जीवित रह पाते। आज भी, काचीन परिवार अपने दादा-परदादाओं की कहानियाँ सुनाते हैं कि कैसे वे उन युवा अमेरिकियों के साथ लड़े जो बेसबॉल के बारे में एक छुरे से ज़्यादा जानते थे। यह साझा संघर्ष में बना एक बंधन था, एक ऐसी भावना जो इतनी शक्तिशाली थी कि एक जीवित वयोवृद्ध दशकों बाद यह घोषणा कर सका, 'मदद करना मेरा कर्तव्य है क्योंकि अमेरिकियों ने हमें आज़ाद कराया था।'

फिर भी, इस बंधन का बार-बार शोषण किया गया है। म्यांमार में कुओमिन्तांग के अवशेषों को हथियारबंद करने के शीत युद्ध के प्रयोगों से लेकर आज काचीन इंडिपेंडेंस आर्मी (KIA) के साथ सूक्ष्म छेड़छाड़ तक, वाशिंगटन ने इस ऐतिहासिक आत्मीयता को एक रणनीतिक लीवर के रूप में इस्तेमाल किया है जिसे जब भी सुविधाजनक हो, खींचा जा सकता है।

अब सीधे अक्टूबर 2024 पर आते हैं, जब केआईए ने दो प्रमुख शहरों, चिपवी और पांगवा पर कब्ज़ा कर लिया। उनका रणनीतिक मूल्य केवल क्षेत्र में नहीं है, बल्कि उसके नीचे जो है, उसमें निहित हैः दुर्लभ पृथ्वी तत्व। ये खनिज, 21वीं सदी की अर्थव्यवस्था का जीवन रक्त, स्मार्टफोन से लेकर F-35 लड़ाकू जेट तक हर चीज़ के लिए आवश्यक हैं। बीजिंग, तकनीकी वर्चस्व की अपनी खोज में, वैश्विक उत्पादन पर अपने लगभग एकाधिकार को पूरा करने के लिए म्यांमार से आयात पर बहुत अधिक निर्भर है। फरवरी 2025 तक, केआईए के नियंत्रण के साथ, म्यांमार से चीन के दुर्लभ पृथ्वी आयात में लगभग 90 प्रतिशत की गिरावट आई।

वाशिंगटन के लिए यह कानों में संगीत की तरह था। चीनी दुर्लभ पृथ्वी पर अपनी निर्भरता से लंबे समय से परेशान, पश्चिम के साथ ऐतिहासिक संबंधों वाले एक सशस्त्र समूह द्वारा चीन की पिछवाड़े की आपूर्ति श्रृंखला के बाधित होने की संभावना एक रणनीतिक मास्टरस्ट्रोक की तरह लग रही थी। लेकिन जो चालाक भू-राजनीति लगती है, वह लापरवाह अति-पहुँच बनने का जोखिम उठाती है। किसी प्रतिद्वंद्वी की संसाधनों तक पहुँच को बाधित करने के लिए सशस्त्र आंदोलनों को गुप्त रूप से प्रोत्साहित करना एक अल्पकालिक जुआ है जो ऐतिहासिक रूप से दीर्घकालिक दुष्परिणाम पैदा करता है। 1980 के दशक में अफ़गान मुजाहिदीन को सीआईए का समर्थन सोवियत संघ को बाहर निकालने में मदद तो कर गया, लेकिन केवल उन चरमपंथियों को सशक्त बनाने के लिए जिन्होंने बाद में अपनी बंदूकें संयुक्त राज्य अमेरिका पर तान दीं। म्यांमार के उलझे हुए जातीय संघर्ष भी इसी तरह का एक ज्वलनशील

मिश्रण प्रस्तुत करते हैं।

चीन, अपनी ओर से, बहुत बेचैन है। वर्षों तक, बीजिंग ने म्यांमार के सैन्य जुंटा को एक आज्ञाकारी भागीदार के रूप में माना, 'मलक्का दुविधा'—अमेरिकी नौसेना द्वारा गश्त किए जाने वाले समुद्री मार्गों पर अपनी ऊर्जा आयात की भेद्यता—को दरकिनार करने के लिए पाइपलाइनों और बुनियादी ढाँचे में अरबों का निवेश किया। लेकिन जुंटा की पकड़ ढीली पड़ रही है। उत्तर में केआईए से लेकर सीमाओं के साथ अन्य जातीय सशस्त्र संगठन (EAOs) अब विशाल क्षेत्रों को नियंत्रित करते हैं। बीजिंग का ग्राहक एक स्थिर भागीदार के बजाय एक डूबते जहाज की तरह दिख रहा है। बीजिंग के लिए दुःस्वप्न का परिदृश्य—अपनी सीमा पर रणनीतिक खनिजों को नियंत्रित करने वाला एक ईसाई-नेतृत्व वाला, पश्चिम-मित्रवत मिलिशिया—तेजी से एक वास्तविकता बन रहा है।

यह ठीक उसी तरह का प्रलोभन है जिसे वाशिंगटन अप्रतिरोध्य पाता हैः मरीन तैनात किए बिना या खरबों खर्च किए बिना चीन को कमजोर करने का एक मौका। जब अगस्त 2025 में अमेरिकी दूत सुसान स्टीवेन्सन ने काचीन-नियंत्रित क्षेत्रों का दौरा किया तो इसका प्रतीकवाद खोया नहीं था। आधिकारिक तौर पर, उनका दौरा मानवीय था। अनौपचारिक रूप से, यह एक संकेत था—चीन के नरम पेट में एक परिकलित जाँच।

यहीं पर अमेरिकी विदेश नीति की बारहमासी खामी निहित हैः अहंकार। वाशिंगटन अक्सर जटिल विदेशी संघर्षों को अवसर के एक सरल लेंस के माध्यम से देखता है। वह काचीन लड़ाकों को सत्तावाद के खिलाफ एक भव्य नैतिक नाटक में साहसी दलितों के रूप में देखता है, इस गन्दी वास्तविकता की अनदेखी करते हुए कि म्यांमार के जातीय संघर्ष साफ-सुथरे लोकतांत्रिक संघर्ष नहीं हैं। वे अतिव्यापी झगड़ों का एक अराजक ताना-बाना हैं—जातीय, धार्मिक, जनजातीय और वाणिज्यिक—जो सात दशकों से चल रहे हैं।

केआईए कोई जेफरसनियन मिलिशिया नहीं है जो उदार लोकतंत्र के लिए तरस रहा है। यह अपनी पदानुक्रम, राजस्व धाराओं और रणनीतिक हितों के साथ एक युद्ध-कठोर बल है। जबकि इसका नेतृत्व मुख्य रूप से ईसाई है, जिसकी जड़ें 19वीं सदी के अमेरिकी बैपटिस्ट मिशनरियों से जुड़ी हैं, यह सांस्कृतिक आत्मीयता राजनीतिक संरेखण का एक खराब भविष्यवक्ता है। वाशिंगटन को अब तक यह सीख लेना चाहिए था कि धार्मिक परिचितता को रणनीतिक विश्वसनीयता के साथ भ्रमित न करें। इस मोर्चे पर अमेरिकी रिकॉर्ड निराशाजनक है। वियतनाम में, अमेरिका ने कैथोलिक अभिजात वर्ग को प्राकृतिक सहयोगी मान लिया, संघर्ष को चलाने वाली शक्तिशाली राष्ट्रवादी धाराओं की अनदेखी की। इराक में, उसने मान लिया कि शिया निर्वासित एक लोकतंत्र का निर्माण करेंगे, केवल सांप्रदायिक नरसंहार को उजागर करने के लिए। अफगानिस्तान में, उसने पश्तून सरदारों को शासन में भागीदार माना, भले ही वे उसी राज्य को खोखला कर रहे थे जिसे अमेरिका बनाने की कोशिश कर रहा था। म्यांमार अलग क्यों होगा?

तरुणाघात

जेन-ज़ेड क्रांति

हिल गए सिंहासन

संजय श्रीवास्तव

पिछले कुछ वर्षों में दक्षिण एशिया की राजनीति ने एक ऐसा मोड़ लिया है, जिसकी पटकथा किसी पुराने नेता ने नहीं, बल्कि 'जेन-ज़ेड' ने लिखी है। बांग्लादेश की गलियों से लेकर श्रीलंका के समुद्रतटों और नेपाल की पहाड़ियों तक—युवा हाथों में प्लेकार्ड और मोबाइल लिए सड़कों पर उतर आए। नतीजा? दशकों से जमे सिंहासन हिल गए, और सत्ता के पुराने किले ढहने लगे। सत्ता और उसके समर्थकों ने कहा यह स्वस्फूर्त आंदोलन नहीं। इसमें बाहरी साजिश है जबकि बाकियों का कहना था कि इस नरेटिव की आड़ में सरकारें अपनी विफलता और भ्रष्टाचार छिपाना चहती हैं। यह आलेख इन्हीं उलझनों को सुलझाने की कोशिश करता है—इन आंदोलनों के असली कारणों, सोशल मीडिया और डिजिटल शक्ति की भूमिका, और वैश्विक ताक़तों के उस जटिल खेल को उजागर करते हुए, जो दक्षिण एशिया के भविष्य को तय करने जा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों से दक्षिण एशिया का राजनीतिक परिदृश्य एक नए और अप्रत्याशित अध्याय का गवाह बन रहा है। दशकों तक सैन्य तख्तापलट या पारंपरिक चुनावी उलटफेर के आदी इस क्षेत्र में अब एक नई ताकत उभरी हैः 'जेन-ज़ेड' । यह वह युवा पीढ़ी है, जिसने बांग्लादेश, श्रीलंका और नेपाल जैसे देशों में सड़कों पर उतरकर सत्ता के पुराने समीकरणों को चुनौती दी, और कई मामलों में, उन्हें उखाड़ फेंका। यह सिर्फ़ एक क्षेत्रीय परिघटना नहीं, बल्कि 'अरब स्प्रिंग' की प्रतिध्वनि है, जिसकी जड़ें ईरानी क्रांति तक जा पहुँचती हैं – एक ऐसा ट्रेंड जहाँ जनता का आक्रोश, विशेषकर युवाओं का, अप्रत्याशित राजनीतिक परिवर्तन लाता है। लेकिन क्या ये आंदोलन सिर्फ़ घरेलू असंतोष का परिणाम हैं, या फिर पर्दे के पीछे से कोई 'ग्लोबल डीप स्टेट' अपने हितों के तहत इन ज्वलंत विद्रोहों को हवा दे रहा है? यह सवाल इस पूरे घटनाक्रम को एक जटिल भू-राजनीतिक पहेली में बदल देता है, जिसकी परतों को सावधानी से उधेड़ना आवश्यक है।

दक्षिण एशिया में 'स्प्रिंग' की आहट

श्रीलंका के 'अरगलय' से लेकर बांग्लादेश के 'द्वितीय मुक्ति' और नेपाल के 'जेन-ज़ेड विद्रोह' तक, इन आंदोलनों ने स्पष्ट कर दिया है कि दक्षिण एशिया में राजनीतिक अस्थिरता का एक नया दौर शुरू हो चुका है। प्रत्येक देश की अपनी विशिष्ट पृष्ठभूमि और तात्कालिक ट्रिगर थे, लेकिन इन सभी में एक गहरा और साझा असंतोष छिपा थाः वादों के टूटने, भ्रष्टाचार के फैलाव और एक ऐसे राजनीतिक कुलीन वर्ग की अनदेखी के प्रति क्रोध, जिसने युवा पीढ़ी को एक अंधकारमय भविष्य की ओर धकेल दिया था।

श्रीलंकाः जब आर्थिक सुनामी ने राजवंश को डुबोया

2022 में श्रीलंका का 'अरगलय' (सिंहली में 'संघर्ष') आंदोलन सिर्फ़ एक विरोध प्रदर्शन नहीं था; यह उस आर्थिक सुनामी का सीधा जवाब था, जिसने एक समय समृद्ध दिखने वाले द्वीप राष्ट्र को घुटनों पर ला दिया था। महीनों तक चली अभूतपूर्व मुद्रास्फीति, ईंधन और रसोई गैस के लिए अंतहीन कतारें, 12 घंटे की बिजली कटौती और आवश्यक वस्तुओं की गंभीर कमी ने दैनिक जीवन को नरक बना दिया था। इस आर्थिक संकट का सीधा आरोप राजपक्षे परिवार पर लगा, जिसने पिछले 18 में से 15 वर्षों तक देश पर शासन किया था। अर्थव्यवस्था के ढहने और दैनिक जीवन के असहनीय हो जाने पर यह आंदोलन तेज हुआ, जिससे गोटाबाया राजपक्षे जैसे वंशवादी

नेताओं को सत्ता छोड़नी पड़ी। जनता का आक्रोश इस हद तक पहुँचा कि उन्होंने राष्ट्रपति गोताबया राजपक्षे के आलीशान निवास और कोलंबो में 'गोटा गो गामा' नामक विरोध स्थल को अपने नियंत्रण में ले लिया, जहाँ कला, संगीत और भाषणों के माध्यम से विरोध का एक अनूठा केंद्र विकसित हुआ। यह आंदोलन, जिसे युवा कार्यकर्ताओं ने बड़े पैमाने पर सोशल मीडिया के ज़रिए संगठित किया, गोताबया राजपक्षे को देश छोड़कर भागने पर मजबूर कर गया। यह सिर्फ़ एक नेता का पतन नहीं था, बल्कि एक वंशवादी शासन का अंत था, जिसकी जड़ें देश की राजनीति में गहराई तक जम चुकी थीं। 'सिस्टम चेंज' की गूँज कोलंबो की सड़कों पर सुनाई देने लगी थी, जो सिर्फ़ नेताओं को बदलने से कहीं ज्यादा संस्थागत और संरचनात्मक सुधारों की आकांक्षा को दर्शाता। आंदोलन के पीछे विदेशी साजिश के दावों की पड़ताल में निर्णायक प्रमाण नहीं मिले। इसके बजाय, मानवाधिकार संगठनों ने इसे घरेलू विफलताओं और जनाक्रोश का परिणाम बताया।

यह सिर्फ़ गोताबया राजपक्षे का पतन नहीं था, बल्कि एक वंशवादी शासन का अंत था।'सिस्टम चेंज' की गूँज कोलंबो की सड़कों पर सुनाई देने लगी थी, जो सिर्फ़ नेताओं को बदलने से कहीं ज्यादा संस्थागत और संरचनात्मक सुधारों की आकांक्षा को दर्शाता। आंदोलन के पीछे विदेशी साजिश के दावों की पड़ताल में निर्णायक प्रमाण नहीं मिले। इसके बजाय, मानवाधिकार संगठनों ने इसे घरेलू विफलताओं और जनाक्रोश का परिणाम बताया।

बांग्लादेश का 'द्वितीय मुक्ति'

बांग्लादेश में 2024 का घटनाक्रम एक छात्र-नेतृत्व वाले अभियान के रूप में शुरू हुआ, जिसका निशाना सरकारी नौकरियों में 'भेदभावपूर्ण' कोटा प्रणाली थी। यह कोटा, जो 1971 के स्वतंत्रता संग्राम के दिग्गजों के वंशजों के लिए 30% तक सीटें आरक्षित करता था, युवा पीढ़ी को सीधे तौर पर अव्यवस्था और भाई-भतीजावाद का प्रतीक लगा। प्रधानमंत्री शेख हसीना ने इस माँग का उपहास करते हुए छात्रों को 'राजकार' (पाकिस्तान के सहयोगी) कहा, जो एक ऐसा अपमान था जिसने विद्रोह को और भड़का दिया। छात्रों ने इस शब्द को 'बैज ऑफ़ ऑनर' की तरह पहना और 'कौन हो तुम? कौन हूँ मैं? राजकार। किसने कहा? तानाशाह!' जैसे नारे सड़कों पर गूँजने लगे। पुलिस की बर्बर

कार्रवाई में सैकड़ों निर्दोष प्रदर्शनकारियों की मौत ने आंदोलन का चरित्र ही बदल दिया। यह अब सिर्फ़ कोटा के खिलाफ़ नहीं, बल्कि शेख हसीना के लंबे और सत्तावादी शासन के खिलाफ़ एक व्यापक विद्रोह बन गया, जिन्होंने 15 वर्षों से अधिक समय तक देश पर शासन किया था। उस युवा पीढ़ी के लिए, जिसने हसीना के शासन के अलावा कुछ देखा ही नहीं था, उनका शासन उत्पीड़न और अवसरों की कमी का पर्याय बन चुका था। सोशल मीडिया ने इस आंदोलन को एक ढीली संरचना और व्यापक पहुँच प्रदान की, और अंततः 5 अगस्त 2024 को शेख हसीना को देश छोड़कर भारत भागना पड़ा। नोबेल विजेता मुहम्मद यूनुस के नेतृत्व में एक अंतरिम सरकार की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य देश को नए और निष्पक्ष चुनावों की ओर ले जाना था।बांग्लादेश की शासक पार्टी ने आंदोलकारी छात्रों पर पाकिस्तान या अमेरिकी हस्तक्षेप की अफवाहें जरूर चलाईं, लेकिन स्वतंत्र रिपोर्ट्स में आंदोलन की जड़ें देश की सामाजिक-आर्थिक असमानता और सत्ताधारी दल की अलोकप्रिय नीतियों तक ही सीमित रहीं।

नेपाल का 'जेन-जेड विद्रोह'

नेपाल में 2025 का आंदोलन एक तात्कालिक ट्रिगर से शुरू हुआः सरकार द्वारा सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर लगाया गया प्रतिबंध, जिसे 'गलत इस्तेमाल' और 'पंजीकरण' न करने का हवाला देकर लागू किया गया था। लेकिन यह प्रतिबंध सिर्फ़ चिंगारी थी। दशकों से पनप रही असमानता, व्यापक भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और राजनीतिक कुलीन वर्ग के हाथों में सिमटी सत्ता ने युवा पीढ़ी में गहरे असंतोष को जन्म दिया था। #NepoKid जैसे सोशल मीडिया ट्रेंड्स ने राजनेताओं के बच्चों की विलासितापूर्ण जीवनशैली और विदेशी शिक्षा को उजागर किया, जबकि देश का युवा बेरोजगारी और पलायन की मार झेल रहा था। यह 'नैतिक आक्रोश' था, जैसा कि विश्लेषक कहते हैं, एक पीढ़ी के खिलाफ़ जिसने उनका भविष्य चुरा लिया था। प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली ने शुरू में आंदोलनकारियों का उपहास किया, लेकिन जब विरोध प्रदर्शन हिंसक हो उठे, 70 से अधिक लोग मारे गए और संसद भवन व उनके अपने घर पर प्रदर्शनकारियों ने कब्जा कर लिया, तो ओली को इस्तीफा देना पड़ा। हिंसा के बावजूद, युवाओं की इस आवाज़ को दबाया नहीं जा सका। पूर्व मुख्य न्यायाधीश सुशीला कार्की को अंतरिम प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया, जिनकी नियुक्ति में युवा-नेतृत्व वाले ऑनलाइन सर्वेक्षण ने भी भूमिका निभाई थी, जो 'डिजिटल लोकतंत्र' के एक नए रूप का प्रतीक था। नेपाल में जेन ज़ेड आंदोलन के युवा आंदोलनकारियों की मुख्य मांगें - भ्रष्टाचार का खात्मा, पारदर्शी और जवाबदेह शासन तथा सोशल मीडिया पर से बैन हटाना थीं। सरकार और कुछ समर्थकों ने इसे विदेशी साजिश कहने की कोशिश की, लेकिन आंदोलन को नेतृत्व देने वालों, मानवाधिकार पर्यवेक्षकों और अंतरराष्ट्रीय विश्लेषकों ने इसे स्थानीय असंतोष और असफल शासन व्यवस्था का परिणाम माना

इन आंदोलनों के पीछे कुछ गहरे संरचनात्मक मुद्दे हैं, जो दक्षिण एशिया की युवा आबादी के लिए एक अनिश्चित भविष्य की तस्वीर पेश करते हैं। पत्रकारों, शोधकर्ताओं और मानवाधिकार संगठनों का निष्कर्ष यही है कि आंदोलनों की वजह— भ्रष्टाचार, आर्थिक असफलताएं, बेरोजगारी और अलोकतांत्रिक प्रवृत्तियां थीं।

है। कई जगह सोशल मीडिया पर गलत सूचनाएं और बाहरी प्रभाव की अफवाहें जरूर आईं, लेकिन प्रमाण ऐसे नहीं मिले कि आंदोलन मुख्यतः विदेशी साजिश थी

पीढ़ीगत खाई और ध्वस्त होती उम्मीदें

इन सभी आंदोलनों के पीछे कुछ गहरे संरचनात्मक मुद्दे हैं, जो दक्षिण एशिया की युवा आबादी के लिए एक अनिश्चित भविष्य की तस्वीर पेश करते हैं। सत्ता पक्ष ने शुरू में या तो विदेशी साजिश, या विपक्षी दलों की मिलीभगत के आरोप लगाए, परंतु स्थापित पत्रकारों, शोधकर्ताओं और मानवाधिकार संगठनों का निष्कर्ष यही है कि आंदोलनों की वजह— भ्रष्टाचार, आर्थिक असफलताएं, बेरोजगारी और अलोकतांत्रिक प्रवृत्तियां थीं। डिजिटल माध्यमों ने युवाओं की नाराजगी को नया मंच दिया, और सरकारों के दावों के बावजूद, आंदोलन व्यापक घरेलू असंतोष के प्रतीक बने।

अवसरहीनता का दलदल और आर्थिक कुप्रबंधन

दक्षिण एशिया एक युवा क्षेत्र है, जहाँ इन तीनों देशों की लगभग 50% आबादी 28 वर्ष से कम है। उनकी साक्षरता दर 70% से अधिक है, लेकिन प्रति व्यक्ति जीडीपी वैश्विक औसत से काफ़ी कम है। इस शैक्षिक योग्यता और आर्थिक अवसर के बीच का विशाल अंतर ही आक्रोश का मूल है। श्रीलंका में 22.3%, बांग्लादेश में 16.8% और नेपाल में 20.8% की युवा बेरोजगारी दर एक विस्फोटक मिश्रण तैयार करती है। यह वह पीढ़ी है जिसने अपने जीवनकाल में कम से कम दो बड़ी आर्थिक मंदी (2008-09 और COVID-19) का अनुभव किया है। उन्हें लगता है कि उनकी क्षमता और आकांक्षाओं को राजनीतिक व्यवस्था ने रौंद दिया है, जिससे 'ब्रेन ड्रेन' की समस्या गंभीर हो गई है, जहाँ लाखों युवा बेहतर अवसरों की तलाश में विदेशों में पलायन कर रहे हैं। नेपाल की अर्थव्यवस्था का एक तिहाई हिस्सा रेमीटेंस पर निर्भर करता है, जो इस पलायन की भयावहता को दर्शाता है। यह सिर्फ़ आर्थिक निर्णय नहीं, बल्कि सरकार की अक्षमता पर 'मौन जनमत संग्रह' है।

भ्रष्टाचार का दीमक और भाई-भतीजावाद की बेल

इन देशों में भ्रष्टाचार का स्तर इतना गहरा है कि इसने सार्वजनिक जीवन के हर पहलू को खोखला कर दिया है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक में उनकी खराब रैंकिंग (सभी 100 से ऊपर) एक गंभीर संस्थागत विफलता को उजागर करती है। सरकारी कार्यालयों में रिश्वतखोरी, सरकारी ठेकों और टेंडरों में मनमानी, तथा सरकारी नौकरियों में 'अपने लोगों' को प्राथमिकता देना आम बात हो गई है। #NepoKid आंदोलन ने इस भाई-भतीजावाद को सीधे युवाओं के गुस्से का निशाना बनाया। जब राजनीतिक कुलीन वर्ग के बच्चे विदेशों में विलासितापूर्ण जीवन जीते हैं, जबकि आम युवा नौकरी के लिए तरसते हैं, तो यह नैतिक आक्रोश एक ज्वलनशील स्थिति पैदा करता है। सुमन पांडे, नेपाल के पर्यटन उद्योग के एक अनुभवी व्यक्ति, ने इसे 'माफिया' शासन बताया, जहाँ 'पिछले 30 सालों से तीन लोगों के बीच म्यूजिकल चेयर्स का खेल चल रहा था और उन्होंने युवा राजनेताओं को कभी मौका नहीं दिया।'

सत्ता का क्षरण और संवादहीनता

इन आंदोलनों का एक मार्मिक पहलू नेताओं की उम्र और युवा प्रदर्शनकारियों की उम्र के बीच का बड़ा अंतर है। नेपाल के ओली 73, बांग्लादेश की हसीना 76 और श्रीलंका के राजपक्षे 74 वर्ष के थे। मीनाक्षी गांगुली, ह्यूमन राइट्स वॉच की उप-एशिया निदेशक, कहती हैं, 'दक्षिण एशिया में युवा अपने राजनीतिक नेताओं से जुड़ने के लिए कुछ भी नहीं ढूँढ पा रहे हैं। बेमेल बहुत ज़्यादा था।' यह बेमेल केवल आयु का नहीं, बल्कि प्राथमिकताओं, दृष्टिकोणों और मूल्यों का भी था। पुराने नेता अक्सर अपनी विरासत और पिछले संघर्षों पर ध्यान केंद्रित करते थे, जबकि युवा भविष्य, अवसरों और न्याय पर केंद्रित थे। पारंपरिक राजनीतिक दल, जो अक्सर व्यक्ति-केंद्रित और गुटबाज़ी का शिकार होते थे, युवाओं की आकांक्षाओं को समझने या उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करने में विफल रहे।

डिजिटल सशक्तिकरण: प्रतिरोध का नया अखाड़ा

जेन-जेड एक ऐसी पीढ़ी है जो इंटरनेट पर पली-बढ़ी है, और उनके लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म सिर्फ़ मनोरंजन के साधन नहीं, बल्कि समुदाय, संगठन और आत्म-अभिव्यक्ति के शक्तिशाली उपकरण हैं। सोशल मीडिया ने इन आंदोलनों को संगठित करने, संदेश फैलाने और व्यापक समर्थन जुटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हैशटैग अभियान जैसे #GoHomeGota और #NepoKid ने विरोध को एक एकीकृत आवाज़ दी। लाइव स्ट्रीमिंग और ऑनलाइन संचार ने प्रदर्शनकारियों को वास्तविक समय में जुड़ने में मदद की और सरकार के दमनकारी प्रयासों को दुनिया के सामने उजागर किया। जब सरकारों ने इंटरनेट एक्सेस या विशिष्ट प्लेटफॉर्म को ब्लॉक करने की कोशिश की, तो इसका उल्टा असर हुआ और यह युवाओं के गुस्से को और भड़काने वाला साबित हुआ। डिजिटल तकनीक ने इन आंदोलनों को 'नेताविहीन' और विकेंद्रीकृत बनाए रखने में मदद की, जिससे पारंपरिक दमनकारी रणनीतियों के खिलाफ़ एक नया लचीलापन पैदा हुआ।

एक-दूसरे से प्रेरित होते विद्रोह

इन आंदोलनों ने एक-दूसरे से प्रेरणा ली है, और 'डिजिटल विरोध पुस्तिका' का विकास किया है। नेपाली युवाओं ने श्रीलंका और बांग्लादेश में हुए विरोध प्रदर्शनों को करीब से देखा और उनसे सीखा। कोलंबिया विश्वविद्यालय की रुमेला सेन कहती हैं कि इन आंदोलनों में इस्तेमाल की जाने वाली रणनीति, 'जिसमें सोशल मीडिया पर हैशटैग अभियान और विकेन्द्रीकृत संगठन शामिल हैं, डिजिटल विरोध के एक उभरते हुए प्लेबुक का प्रतिनिधित्व करते हैं।' यह क्षेत्रीय एकीकरण, हालांकि अनौपचारिक है, एक शक्तिशाली संकेत है कि युवा पीढ़ी अपनी समस्याओं को अलग-थलग घटनाओं के रूप में नहीं देखती, बल्कि एक व्यापक पैटर्न के हिस्से के रूप में देखती है।

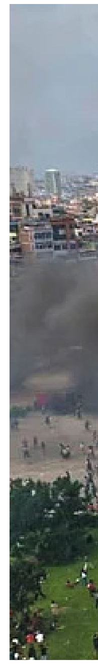

'ग्लोबल डीप स्टेट' की छाया?

इन व्यापक जन आंदोलनों के उभार के साथ ही, एक

विवादास्पद अवधारणा – 'ग्लोबल डीप स्टेट' – की भूमिका पर भी सवाल उठने लगे हैं। यह परिकल्पना, जो अक्सर षड्यंत्र-सिद्धांतों से जुड़ी होती है, मानती है कि वैश्विक स्तर पर कुछ शक्तिशाली, अप्रत्यक्ष अभिनेता (राज्य या गैर-राज्य) अपने भू-राजनीतिक और आर्थिक हितों को साधने के लिए विभिन्न संगठनों और माध्यमों से सत्ता परिवर्तन को बढ़ावा देते हैं। यह तर्क दिया जाता है कि ये शक्तियाँ अरब स्प्रिंग से लेकर उससे पहले की ईरानी क्रांति तक के आंदोलनों में सक्रिय रही हैं। दक्षिण एशिया के इन युवा-नेतृत्व वाले विद्रोहों में भी कुछ लोग बाहरी ताकतों के हाथ होने का आरोप लगाते हैं, विशेषकर जब सत्ता परिवर्तन इतनी तेज़ी से होता है कि स्थानीय लोगों को भी विश्वास नहीं होता।

'डीप स्टेट' की अवधारणा का अनावरण

'डीप स्टेट' शब्द आम तौर पर किसी देश के भीतर एक समानांतर, अप्रत्यक्ष सत्ता संरचना को संदर्भित करता है जो निर्वाचित सरकार से स्वतंत्र रूप से काम करता है, अक्सर खुफिया एजेंसियों, सैन्य प्रतिष्ठानों और शक्तिशाली नौकरशाहों के माध्यम से। 'ग्लोबल डीप स्टेट' इस अवधारणा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विस्तारित करता है, जहाँ शक्तिशाली देशों की खुफिया एजेंसियां, बहुराष्ट्रीय निगम, थिंक टैंक, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं और वैश्विक गैर-सरकारी संगठन पर्दे के पीछे से काम करते हैं। उनका उद्देश्य राजनीतिक अस्थिरता पैदा करना, सरकारों को कमजोर करना, या ऐसे सत्ता परिवर्तन को सुविधाजनक बनाना हो सकता है जो उनके रणनीतिक या आर्थिक लाभ के लिए फायदेमंद हो। ये हस्तक्षेप अक्सर 'लोकतंत्र को बढ़ावा देने', 'मानवाधिकारों की रक्षा करने' या 'स्थिरता स्थापित करने' के आवरण में छिपे होते हैं, लेकिन आलोचक इसे बाहरी शक्तियों द्वारा अपने भू-राजनीतिक एजेंडे को आगे बढ़ाने का एक मुखौटा मानते हैं।

दक्षिण एशिया के मोर्चे पर बाहरी हस्तक्षेप के स्वर

इन दक्षिण एशियाई मामलों में, बाहरी ताकतों की भूमिका को लेकर आरोप और प्रत्यारोप सुनाई देते रहे हैं। लेकिन यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि बाहरी अभिनेता शायद ही कभी शून्य से जन आंदोलनों को उत्पन्न करते हैं। इसके बजाय, वे मौजूदा घरेलू कमजोरियों, असंतोष और संस्थागत दरारों

का लाभ उठाते हैं।

भारत और नेपाल का जटिल रिश्ता: नेपाल की अस्थिरता का भारत पर तत्काल और सीधा सुरक्षा प्रभाव पड़ता है। खुली सीमा और गहरे ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संबंधों के कारण, भारत काठमांडू में एक स्थिर और विश्वसनीय साझेदार चाहता है। नेपाली वामपंथी और राजशाही समर्थक अक्सर भारत पर अपनी राजनीति में हस्तक्षेप करने का आरोप लगाते रहे हैं। केपी शर्मा ओली की चीन-उन्मुख नीतियों ने निश्चित रूप से भारत को असहज किया होगा। ओली सरकार के पतन के बाद भारत द्वारा अंतरिम सरकार का तुरंत स्वागत करना इस बात का संकेत हो सकता है कि दिल्ली ने इस बदलाव को अपने पक्ष में देखा।

चीन की बढ़ती रणनीतिक पैठ: नेपाल की उत्तरी सीमा चीन के तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र से लगती है, और बीजिंग ने हाल के वर्षों में नेपाल में अपना कूटनीतिक और आर्थिक प्रभाव बढ़ाया है। चीन की महत्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव नेपाल को 'ट्रांस-हिमालयन नेटवर्क' का हिस्सा बनाना चाहती है, जिसे भारत अक्सर चीन की विस्तारवादी रणनीति के रूप में देखता है। नेपाल की वामपंथी पार्टियों का चीन की ओर झुकाव स्पष्ट है। ओली का बीजिंग सैन्य परेड में भाग लेना और लिपुलेख दर्रे पर भारत-चीन समझौते पर आपत्ति जताना, चीन के साथ उनकी बढ़ती निकटता को दर्शाता था। चंद्र भट्ट जैसे भू-राजनीतिक विश्लेषक इसे 'असामान्य' बताते हैं, क्योंकि नेपाल का जुड़ाव पारंपरिक रूप से भारत और पश्चिम से अधिक रहा है।

पश्चिम का 'लोकतांत्रिक' प्रभाव: अमेरिका और यूरोपीय संघ जैसे पश्चिमी देश अक्सर वित्तपोषण के माध्यम से नेपाल में नीतिगत ढाँचों और नागरिक समाज का समर्थन करते हैं। अमेरिका द्वारा मिलेनियम चैलेंज कॉर्पोरेशन के तहत नेपाल में पावर ग्रिड और सड़क ढांचे के लिए 530 मिलियन डॉलर का अनुदान, जिसे अक्सर चीन के BRI के जवाब के रूप में देखा जाता है, पश्चिमी देशों के रणनीतिक हितों को दर्शाता है। श्रीलंका में 'अरगलय' के दौरान, कुछ अति-राष्ट्रवादियों ने USAID पर विरोध प्रदर्शनों को वित्तपोषित करने का आरोप लगाया, हालांकि इसके कोई ठोस सबूत नहीं मिले। पश्चिमी हित अक्सर लोकतांत्रिक मूल्यों, मानवाधिकारों और सुशासन के नाम पर काम करते हैं, जिसे 'डीप स्टेट' के सिद्धांतकार बाहरी हस्तक्षेप का एक रूप मानते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का दबाव: श्रीलंका के आर्थिक संकट में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की भूमिका उल्लेखनीय थी। IMF के साथ किसी भी बचाव पैकेज के लिए अक्सर कठोर आर्थिक सुधारों और मितव्ययिता उपायों को लागू करने की शर्त रखी जाती है, जो अल्पावधि में जनता के असंतोष को बढ़ा सकते हैं। हालांकि IMF सीधे तौर पर सत्ता परिवर्तन को बढ़ावा नहीं देता, इसकी नीतियां अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक अस्थिरता को प्रभावित कर सकती हैं, जिससे बाहरी शक्तियों के लिए 'प्रबंधन' के अवसर पैदा हो सकते हैं।

भू-राजनीतिक शक्तियों का बारीक खेल: यह तर्क देना अधिक यथार्थवादी है कि इन दक्षिण एशियाई आंदोलनों का प्राथमिक चालक गहरी घरेलू शिकायतें और संस्थानों की विफलता है। बाहरी शक्तियाँ शायद ही कभी जन आंदोलनों को शून्य से उत्पन्न करती हैं; इसके बजाय, वे मौजूदा असंतोष, आर्थिक संकट और कमजोर शासन का लाभ उठाने के लिए तैयार रहती हैं। नेपाल में तिब्बती धर्मगुरु दलाई लामा का बधाई संदेश या जापान का ओली के पतन पर तुरंत स्वागत करना, बाहरी अभिनेताओं द्वारा 'पसंद' किए गए परिणामों के संकेतक हो सकते हैं, न कि सीधे उकसावे के।

भू-राजनीतिक शक्तियाँ अक्सर 'सूचना युद्ध' और 'नैरेटिव निर्माण' में संलग्न होती हैं, जहाँ सोशल मीडिया एक प्रमुख युद्ध

बाहरी शक्तियाँ शायद ही कभी जन आंदोलनों को शून्य से उत्पन्न करती हैं; इसके बजाय, वे मौजूदा असंतोष, आर्थिक संकट और कमजोर शासन का लाभ उठाने के लिए तैयार रहती हैं। नेपाल में तिब्बती धर्मगुरु दलाई लामा का बधाई संदेश या जापान का ओली के पतन पर तुरंत स्वागत करना, बाहरी अभिनेताओं द्वारा 'पसंद' किए गए परिणामों के संकेतक हो सकते हैं, न कि सीधे उकसावे के।

का मैदान बन जाता है। वे विरोध प्रदर्शनों को बढ़ावा देने, एक विशेष परिणाम के लिए सार्वजनिक राय को प्रभावित करने या अपने अनुकूल नैरेटिव स्थापित करने के लिए लक्षित प्रचार का उपयोग कर सकते हैं। यह 'सॉफ्ट पावर' का खेल है, जहाँ विचारों और सूचनाओं के माध्यम से प्रभाव डाला जाता है।

सैन्य संस्थानों की भूमिका भी इस भू-राजनीतिक समीकरण में महत्वपूर्ण है। श्रीलंका, बांग्लादेश और नेपाल, तीनों देशों में सैन्य ने सरकार परिवर्तन के दौरान एक निश्चित संयम दिखाया। श्रीलंका में सेना ने प्रदर्शनकारियों पर सीधे बल प्रयोग से परहेज किया और राजपक्षे को सुरक्षित निकलने में मदद की। बांग्लादेश और नेपाल में भी सैन्य ने एक 'किंगमेकर' की भूमिका निभाई, जिससे एक सुचारू (हालांकि अनिश्चित) संक्रमण सुनिश्चित हुआ। यह संयम आंतरिक मूल्यांकन का परिणाम हो सकता है, लेकिन यह बाहरी शक्तियों के साथ समझ या दबाव का भी परिणाम हो सकता है, जो अराजकता के बजाय क्षेत्रीय स्थिरता पसंद करते हैं, क्योंकि पूर्ण अराजकता उनके निवेश और रणनीतिक हितों के लिए अधिक हानिकारक होती है।

संक्षेप में, यह अधिक संभावना है कि बाहरी अभिनेता इन आंदोलनों को 'मैनेज' या 'नेविगेट' करने का प्रयास करते हैं, बजाय इसके कि वे उन्हें 'रचना' करें। उनका उद्देश्य अक्सर अपने दीर्घकालिक हितों के अनुरूप एक अनुकूल परिणाम सुनिश्चित करना होता है, जो अक्सर स्थिरता, आर्थिक पहुंच और भू-राजनीतिक संतुलन से जुड़ा होता है। वे मौजूदा समस्याओं को बढ़ाने में निवेश कर सकते हैं, लेकिन उन समस्याओं को उत्पन्न करने में नहीं, जो पहले से ही घरेलू परिस्थितियों में मौजूद हैं।

अराजकता या नया सवेरा?

इन युवा-नेतृत्व वाले आंदोलनों के परिणाम तात्कालिक और दीर्घकालिक दोनों हैं, जिनमें भारी अनिश्चितता और नई चुनौतियाँ

यह भी स्पष्ट है कि 'ग्लोबल डीप स्टेट' इन घटनाओं को उकसाता नहीं, बल्कि इन्हें अपने हित में इस्तेमाल करता है। बाहरी शक्तियों का उद्देश्य अराजकता फैलाना नहीं, बल्कि उसे इस तरह से प्रबंधित करना है ताकि परिणाम उनके पक्ष में झुके। वे मौजूदा घरेलू दरारों का लाभ उठाते हैं, सूचना युद्ध में संलग्न होते हैं, और संकट को अपने भू-राजनीतिक लक्ष्यों के अनुरूप ढालने की कोशिश करते हैं।

भी शामिल हैं। प्रधानमंत्रियों के इस्तीफ़े और अंतरिम सरकारों की स्थापना तो हो गई है, लेकिन असली संघर्ष अब शुरू होता है।

सत्ता का शून्य और अवसरवादियों की दस्तकः 'नेताविहीन' प्रकृति के बावजूद, इन आंदोलनों ने अक्सर एक राजनीतिक शून्य पैदा किया, जिसे विभिन्न राजनीतिक दल और अवसरवादी समूह भरने की कोशिश करते हैं। श्रीलंका में, वामपंथी जनथा विमुक्ति पेरामुना के नेतृत्व वाले नेशनल पीपल्स पावर गठबंधन ने 'अरगलय' की ऊर्जा का सफलतापूर्वक लाभ उठाया और 2024 के चुनावों में भारी जीत हासिल की। यह दर्शाता है कि कैसे एक लोक-लुभावन आंदोलन एक स्थापित राजनीतिक दल के लिए सत्ता का मार्ग प्रशस्त कर सकता है, भले ही वह दल पहले हाशिए पर रहा हो। बांग्लादेश में, जमात-ए-इस्लामी समर्थित संगठनों की विश्वविद्यालय चुनावों में जीत एक चिंताजनक प्रवृत्ति को रेखांकित करती है, जहाँ कट्टरपंथी विचारधाराएँ राजनीतिक शून्य का लाभ उठाकर उभर सकती हैं। नेपाल में भी, नए युवा-आधारित राजनीतिक दलों के गठन की बात हो रही है, लेकिन पुराने दल भी नए चेहरों के साथ वापसी की फिराक में हैं।

संस्थागत सुधारों की अनवरत चुनौतीः आंदोलन भले ही तत्काल सत्ता परिवर्तन ला दें, लेकिन स्थायी संस्थागत सुधारों को लागू करना कहीं अधिक कठिन और लंबा संघर्ष है। श्रीलंका में, राजपक्षे राजवंश को उखाड़ फेंका गया, लेकिन संस्थागत भ्रष्टाचार और जवाबदेही की समस्या अभी भी बनी हुई है। NPP सरकार, जिसने बदलाव का वादा किया था, को भी IMF समझौतों और आर्थिक चुनौतियों के बीच कठोर निर्णय लेने पड़ रहे हैं, जो उसके चुनावी वादों से भिन्न हो सकते हैं। बांग्लादेश में अंतरिम सरकार को लंबे समय से चली आ रही सत्तावादी प्रणालियों, राजनीतिक ध्रुवीकरण और अल्पसंख्यकों के खिलाफ़ हिंसा की चुनौतियों से निपटना पड़ रहा है। नेपाल में भी, अंतरिम सरकार को पिछली सरकार के भ्रष्ट तत्वों के खिलाफ़ कार्रवाई करने और मुक्त व निष्पक्ष चुनाव कराने की दोहरी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।

युवाओं की बेसब्र उम्मीदें और क्षेत्रीय स्थिरताः अंतरिम सरकारों को जनता, विशेषकर युवाओं के विश्वास को बहाल करना होगा, जिनकी उम्मीदें बहुत ज़्यादा हैं। उन्हें भ्रष्टाचार के खिलाफ़ कार्रवाई करनी होगी, आर्थिक स्थिरता लानी होगी और सबसे महत्वपूर्ण, रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा करने होंगे। यदि वे इन उम्मीदों पर खरे नहीं उतरते, तो निराशा का एक नया चक्र शुरू हो सकता है, जिससे और अधिक विरोध प्रदर्शनों की संभावना बढ़ जाएगी।

क्षेत्रीय स्तर पर, एक देश में राजनीतिक अस्थिरता का दूसरे देशों पर 'छूने' का प्रभाव हो सकता है, जिससे पूरे क्षेत्र में इसी तरह के आंदोलनों को बढ़ावा मिल सकता है। यह 'दक्षिण एशिया के लिए एक नया डॉक्टरिन ऑफ इन्स्टेबिलिटी' बन सकता है, जहाँ युवा आक्रोश एक देश से दूसरे देश में फैल सकता है। यह बाहरी शक्तियों को भी अपनी भू-राजनीतिक रणनीतियों का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करेगा। भारत, चीन और अमेरिका जैसे देश अपने हितों की रक्षा के लिए अपनी कूटनीतिक और आर्थिक सहायता में बदलाव कर सकते हैं।

चौराहे पर दक्षिण एशिया

दक्षिण एशिया में जेन-जेड के नेतृत्व वाले सत्ता परिवर्तन आंदोलन डिजिटल युग के 'पब्लिक स्फीयर' का एक स्पष्ट उदाहरण हैं, जहाँ सोशल मीडिया ने सत्ता-विरोधी भावनाओं को एक साझा मंच दिया है। ये विद्रोह घरेलू असंतोष, आर्थिक कुप्रबंधन, भ्रष्टाचार और राजनीतिक कुलीन वर्ग से युवाओं के गहरे मोहभंग का सीधा परिणाम हैं। उन्होंने यह साबित कर दिया है कि युवा पीढ़ी अपने भविष्य को पुराने राजनीतिक समीकरणों के हाथों में छोड़ने को तैयार नहीं है।

बड़ी तस्वीर में दो तरह की संभावनाएँ हैं। एक सकारात्मक दिशा यह है कि यदि ये आंदोलन स्थायी संस्थागत सुधार लाने में सफल होते हैं – जिसमें पारदर्शिता, जवाबदेही और समावेशी शासन शामिल है – तो दक्षिण एशिया लोकतंत्र और विकास के एक नए युग में प्रवेश कर सकता है। श्रीलंका में NPP की जीत और बांग्लादेश व नेपाल में अंतरिम सरकारों का गठन, यदि वे सही दिशा में काम करते हैं, तो एक नई शुरुआत का संकेत हो सकते हैं। दूसरी तरफ, एक नकारात्मक दिशा यह हो सकती है कि यदि यह ऊर्जा सिर्फ़ 'सत्ता पलट' तक ही सीमित रही और ठोस संस्थागत सुधार नहीं हुए, तो पैदा हुआ राजनीतिक शून्य नए अवसरवादियों, कट्टरपंथियों और अलोकतांत्रिक शक्तियों से भर जाएगा, जिससे अस्थिरता का चक्र और भी गहराएगा।

यह भी स्पष्ट है कि 'ग्लोबल डीप स्टेट' इन घटनाओं को उकसाता नहीं, बल्कि इन्हें अपने हित में इस्तेमाल करता है। बाहरी शक्तियों का उद्देश्य अराजकता फैलाना नहीं, बल्कि उसे इस तरह से प्रबंधित करना है ताकि परिणाम उनके पक्ष में झुके। वे मौजूदा घरेलू दरारों का लाभ उठाते हैं, सूचना युद्ध में संलग्न होते हैं, और संकट को अपने भू-राजनीतिक लक्ष्यों के अनुरूप ढालने की कोशिश करते हैं। सैन्य संस्थानों का 'संयमित' व्यवहार अक्सर इसी बड़े भू-राजनीतिक प्रबंधन का हिस्सा होता है, जो कुल मिलाकर अराजकता को रोककर क्षेत्रीय स्थिरता सुनिश्चित करने का प्रयास करता है। इसलिए, विदेशी साजिश वाली दलीलें अधिकतर सरकारों की अपनी जिम्मेदारी और विफलता से ध्यान हटाने की कोशिश प्रतीत होती हैं। इन देशों में स्पष्ट रूप से सामने आया कि युवाओं का आक्रोश लोकल कारणों से शुरू हुआ और उसकी मूल वजह भ्रष्टाचार, सरकार की विफलता और लोकतांत्रिक मूल्यों का क्षरण थी— न कि कोई बाहरी साजिश

अंततः, दक्षिण एशियाई सरकारों के लिए यह एक सीधा और स्पष्ट संदेश है कि सिर्फ़ चुनाव और सत्ता का प्रतीकात्मक हस्तांतरण अब पर्याप्त नहीं है। उन्हें पारदर्शिता और जवाबदेही को मजबूत करना होगा, युवाओं को सार्थक रोजगार और आर्थिक अवसर प्रदान करने होंगे, शिक्षा प्रणाली को बाज़ार की ज़रूरतों से जोड़ना होगा, और आर्थिक सुधारों को जनता-उन्मुख बनाना होगा। अन्यथा, शिक्षा का ज्ञान, बेरोज़गारी का दर्द और डिजिटल माध्यमों की शक्ति मिलकर लगातार नई बगावतें पैदा करते रहेंगे। जेन-ज़ेड ने एजेंडा तय कर दिया है। अब यह क्षेत्रीय नेतृत्व पर निर्भर करता है कि वह इस ज्वलंत ऊर्जा को स्थायी और सकारात्मक दिशा देता है, या इसे अराजकता के चक्र में फिर से खो जाने देता है। दक्षिण एशिया एक महत्वपूर्ण चौराहे पर खड़ा है, जहाँ भविष्य का मार्ग उसकी अपनी चुनी हुई राह पर ही निर्भर करेगा।

तरुणाघात

जेन-ज़ेड क्रांति

पड़ोस में उबाल, भारत में सवाल

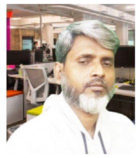

श्रीराजेश

दक्षिण एशिया की राजनीति एक अप्रत्याशित मोड़ पर खड़ी है। बांग्लादेश, श्रीलंका और नेपाल जैसे देशों में 'जेन-ज़ेड' ने पारंपरिक सत्ता को चुनौती दी और उसे हिला कर रख दिया। यह विद्रोह केवल आर्थिक निराशा या भ्रष्टाचार के खिलाफ़ नहीं, बल्कि एक ऐसे राजनीतिक कुलीन वर्ग के प्रति गहरा मोहभंग है, जिसने उनकी आकांक्षाओं को लगातार नज़रअंदाज़ किया। इस क्षेत्रीय उथल-पुथल ने भारत को भी सोचने पर मजबूर कर दिया है कि क्या यह लहर उसके तटों तक भी पहुँच सकती है, और भारत की अपनी सामाजिक-राजनीतिक संरचना ऐसे आंदोलनों को किस हद तक प्रभावित कर सकती है।

बांग्लादेश, श्रीलंका और नेपाल जैसे भारत के पड़ोसी देशों में, एक नई पीढ़ी – 'जेन-ज़ेड' – ने अपने देशों की नियति को सीधे चुनौती दी है। सड़कों पर उतरे इन युवाओं ने न केवल स्थापित सत्ता को हिला दिया, बल्कि कई मामलों में उन्हें उखाड़ फेंका। यह आर्थिक निराशा, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और एक ऐसे राजनीतिक कुलीन वर्ग के प्रति गहरा मोहभंग है, जिसने उनकी आकांक्षाओं को लगातार अनदेखा किया है। इन आंदोलनों ने भारत को एक तरह से शामिल पर्यवेक्षक की भूमिका में ला खड़ा किया है; दिल्ली में नीति-निर्माता और आम नागरिक दोनों ही इस बात पर विचार कर रहे हैं कि क्या यह क्षेत्रीय लहर भारत के तटों तक भी पहुँच सकती है? भारत की बहुलतावादी संस्कृति, मज़बूत संस्थागत ढाँचा और युवाओं के साथ सत्ताधारी दलों का जटिल संबंध, ऐसे आंदोलनों की संभावनाओं को किस हद तक प्रभावित करता है, यह समझना आज की भू-राजनीतिक वास्तविकता के लिए अपरिहार्य है।

पड़ोसी देशों में आक्रोश की गूँज का भारत पर प्रभाव

नेपाल का धधकता 'जेन-ज़ेड विद्रोह', श्रीलंका का 'अरगलय' और बांग्लादेश का 'द्वितीय मुक्ति' – ये सिर्फ़ कुछ देशों की स्थानीय समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि

यह एक व्यापक क्षेत्रीय असंतोष का प्रतिबिंब है, जहाँ युवा पीढ़ी ने निष्क्रिय और भ्रष्ट शासन के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद की है। इन आंदोलनों में तात्कालिक ट्रिगर अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन इनकी जड़ें आर्थिक कुप्रबंधन, अवसरों की कमी और एक ऐसे राजनीतिक तंत्र में गहरी थीं, जिसने जनता के विश्वास को पूरी तरह से खोखला कर दिया था।

पड़ोसी देशों में राजनीतिक उथल-पुथल का भारत पर बहुआयामी और गहरा प्रभाव पड़ता है, जो सिर्फ़ सीमा सुरक्षा तक सीमित नहीं, बल्कि अर्थव्यवस्था और आंतरिक राजनीतिक विमर्श तक फैला हुआ है।

सबसे पहले, सीमा सुरक्षा और अप्रवासी प्रवाह एक बड़ी चिंता का विषय है। नेपाल में विरोध प्रदर्शनों के दौरान बड़े पैमाने पर जेल ब्रेक और कैदियों के भागने की खबरें आई हैं। 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' ने बताया कि नेपाल के विरोधों के दौरान लगभग 13,500 कैदी जेलों से भागे, जिनमें से कई भारत में वांछित अपराधी भी हो सकते हैं। भारत की खुली सीमाएँ ऐसी स्थितियों में अवैध अप्रवास, तस्करी और सीमा पार अपराधों के लिए एक आसान मार्ग बन जाती हैं, जिससे आंतरिक सुरक्षा तंत्र पर भारी दबाव पड़ता है। यह भारत के लिए अपनी सीमा प्रबंधन रणनीतियों पर गंभीरता से पुनर्विचार करने का समय है।

दूसरे, आर्थिक और व्यापारिक व्यवधान भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। भारतीय कंपनियों को नेपाल में व्यापारिक व्यवधानों का सामना

करना पड़ा है। हिंदुस्तान यूनिलीवर, ब्रिटानिया, डाबर, मैरिको और बीकाजी जैसी बड़ी भारतीय एफएमसीजी कंपनियों ने नेपाल में अपने संचालन में बाधाएँ महसूस कीं। ब्रिटानिया को अपने सिमारा प्लांट में काम रोकना पड़ा, और डाबर को कर्मचारियों के लिए 'घर से काम' के आदेश जारी करने पड़े। बीकाजी की चौधरी समूह के साथ संयुक्त उद्यम परियोजना भी विलंबित हो गई। हालाँकि ये कंपनियाँ दावा करती हैं कि नेपाल उनके कुल राजस्व का एक छोटा हिस्सा है, लेकिन विशेषज्ञों का मानना है कि रक्सौल-बिरगंज और सोनाली-भैरहवा जैसे प्रमुख व्यापारिक बिंदुओं पर अस्थिरता से माल की आवाजाही में भारी देरी होती है। इसके अलावा, भारत द्वारा पड़ोसी देशों में नियोजित ऊर्जा और अवसंरचना परियोजनाओं में भी अनिश्चितता के कारण देरी या रद्द होने का जोखिम बढ़ जाता है, जिससे क्षेत्रीय कनेक्टिविटी और भारत के आर्थिक प्रभाव दोनों पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है।

तीसरे, राजनीतिक मॉडल और प्रेरणा का प्रसार एक सूक्ष्म, लेकिन शक्तिशाली प्रभाव है। पड़ोसी देशों में 'जेन-ज़ेड' द्वारा इस्तेमाल की गई रणनीतियाँ, जैसे डिस्कॉर्ड जैसे नए प्लेटफॉर्म का उपयोग करके विकेन्द्रीकृत संगठन, 'नेपोकिड्स' जैसे अभियान और सरकार विरोधी भावनाओं को सोशल मीडिया पर संगठित करना, भारतीय युवाओं के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन सकती हैं। यदि भारतीय युवा संगठन भी ऐसी रणनीतियाँ अपनाते हैं, तो राजनीतिक संवाद का तरीका बदल सकता है और विरोध प्रदर्शनों की दृश्यता में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है, जिससे पारंपरिक राजनीतिक दलों पर दबाव बढ़ेगा।

चौथे, मीडिया और नैरेटिव युद्ध भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का एक अहम हिस्सा बन गया है। जब पड़ोसी देशों में आंदोलनों को भारतीय मीडिया और राजनीतिक दल 'बाहरी शक्ति हस्तक्षेप', 'राजशाही वापसी' या 'ग्राम्य अस्थिरता' जैसे सुविधाजनक फ्रेम में प्रस्तुत करते हैं, तो ये नैरेटिव भारतीय जनमानस, विशेषकर युवाओं की मनोवृत्तियों को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय मीडिया ने नेपाल के जेन-ज़ेड विरोध प्रदर्शनों को मुख्य रूप से 'राजशाही बहाली' के रूप में गलत तरीके से प्रस्तुत किया, जबकि प्रदर्शनकारियों के मुख्य मुद्दे भ्रष्टाचार और असमानता थे। इस तरह की रिपोर्टिंग अक्सर असली मुद्दों को गौण कर देती है और राष्ट्रवादी या धार्मिक एजेंडे को बढ़ावा देती है, जिससे एक गलत धारणा बनती है और भारत की विदेश नीति के प्रति क्षेत्रीय देशों में अविश्वास पैदा हो सकता है। 'कठमांडू पोस्ट' के पूर्व संपादक दिनेश काफले जैसे विश्लेषक मानते हैं कि भारतीय मीडिया, ख़ासकर सत्ताधारी

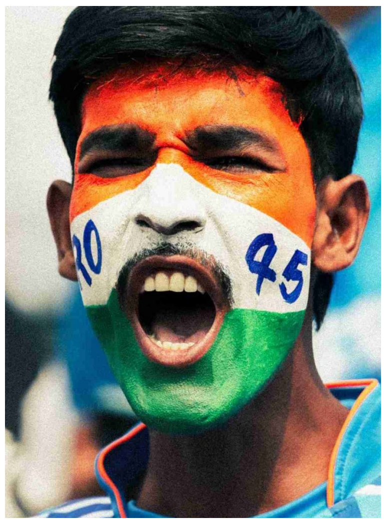

दल के करीब के आउटलेट्स, विदेश मंत्रालय के लेंस से पड़ोसी देशों को देखते हैं, जो कहानी को अक्सर 'सरकार को खुश करने' के लिए फ्रेम करते हैं।

भारत में जेन-ज़ेड क्रांति क्यों नहीं: एक अभेद्य दीवार?

हालाँकि भारत में बड़े पैमाने पर एकीकृत 'जेन-ज़ेड क्रांति' का स्वरूप अभी नहीं दिखता, लेकिन लद्दाख में सोनम वांगचुक के नेतृत्व में चला आंदोलन यह संकेत देता है कि स्थानीय स्तर पर असंतोष किस तरह राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बन सकता है। यहाँ युवाओं और नागरिक समाज ने पर्यावरण संरक्षण, छठी अनुसूची की माँग और पारिस्थितिक सुरक्षा को लेकर विरोध दर्ज किया। यह इस बात का उदाहरण है कि भारत की विविधता और विकेंद्रीकरण, जो बड़े आंदोलन को रोकते हैं, वही छोटे-छोटे क्षेत्रीय आंदोलनों को जन्म देते हैं। लद्दाख का यह विद्रोह बताता है कि भारत में असंतोष सतह के नीचे लगातार सुलग रहा है, और अगर ऐसे आंदोलनों को नजरअंदाज किया गया तो यह 'मॉडल केस' बनकर अन्य हिस्सों में भी गूँज सकता है।

पड़ोसी देशों में क्रांति का सैलाब उमड़ने के बावजूद, भारत अभी तक एक व्यापक, सत्ता-उखाड़ने वाले 'जेन-ज़ेड' आंदोलन से अछूता रहा है। यह भारत की विशिष्ट सामाजिक-राजनीतिक संरचना में निहित है, जो ऐसे आंदोलनों की संभावनाओं को संतुलित करती है या उन्हें दबाती है।

बहुलतावादी समाज और असंतोष का विकेंद्रीकरण: भारत की सामाजिक संरचना अत्यधिक विविध है, जिसमें भाषा, संस्कृति,

धर्म और क्षेत्र के आधार पर गहरी विविधताएँ हैं। जब युवाओं में असंतोष पैदा होता है, तो वह अक्सर एक विशेष क्षेत्र, समुदाय या सामाजिक समूह के स्तर पर संगठित होता है, जिससे पूरे देश में एक सुसंगठित और एक समान युवा आंदोलन का बनना बेहद मुश्किल हो जाता है। यह विविधता विरोध की ऊर्जा को विकेंद्रीकृत कर देती है, जिससे वह एक राष्ट्रीय शक्ति में तब्दील नहीं हो पाती।

स्थानीय राजनीतिक दलों की गहरी जड़ें और ऊर्जा का आत्मसात होनाः भारत में राजनीतिक पार्टियाँ, जिनमें क्षेत्रीय दल भी शामिल हैं, लगभग हर राज्य स्तर पर गहरी जड़ें जमाए हुए हैं। युवा कार्यकर्ता और छात्र संगठन अक्सर इन पार्टी संरचनाओं के भीतर काम करते हैं, जिससे उनकी आवाज़ को पार्टी के माध्यम से व्यक्त करने का एक चैनल मिलता है। इस वजह से, विरोध प्रदर्शन अधिकतर 'स्थानीय मुद्दों' पर केंद्रित रहते हैं और राष्ट्रीय स्तर के युवा विद्रोह की प्रचंड लहर बनने में देरी होती है, क्योंकि पार्टी तंत्र विरोध की ऊर्जा को आत्मसात कर उसे 'नियंत्रित' कर लेता है।

राजनीतिक अभिव्यक्ति के कई सुरक्षित विकल्पः भारत में चुनाव, विधानसभाएँ, पंचायतें, मीडिया और न्यायालय जैसे मज़बूत संस्थागत माध्यम हैं जहाँ युवा अपनी अपेक्षाएँ व्यक्त कर सकते हैं। प्रेस की स्वतंत्रता, कुछ सीमाओं के बावजूद, अभिव्यक्ति के कई प्लेटफॉर्म प्रदान करती है। छात्र आंदोलन भी नियमित रूप से होते रहते हैं। ये विकल्प युवाओं की 'सड़क पर उतरने की प्रेरणा' को कुछ हद तक संतुष्ट कर देते हैं और उन्हें व्यापक अराजकता फैलाने वाले विरोध प्रदर्शनों से दूर रखते हैं, क्योंकि उनके पास शिकायत दर्ज करने और बदलाव की माँग करने के कई 'सुरक्षित' चैनल मौजूद हैं।

सत्ताधारी दल की 'स्मार्ट' रणनीति और युवा संबंधः वर्तमान भारतीय सत्ताधारी दल, विशेषकर भारतीय जनता पार्टी (भाजपा), ने युवा-मतदाता वर्ग और डिजिटल मीडिया पर काफी काम किया है। युवा-उन्मुख योजनाएँ, डिजिटल पहुँच, और सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रभावी इस्तेमाल करके युवाओं की अपेक्षाओं को प्रबंधित करने की कोशिश की गई है। इसके साथ ही, सोशल मीडिया पर 'ट्रोल आर्मी' और नैरेटिव कंट्रोल के माध्यम से सरकार विरोधी आवाज़ों को दबाने का प्रयास भी होता है, जिससे यह धारणा कि केवल विरोध ही एकमात्र विकल्प है, कुछ हद तक कम हुई है।

सांस्कृतिक सहिष्णुता और सामाजिक नियंत्रण के अंतर्निहित तंत्रः भारत में सामाजिक नियंत्रण के कई निहित तंत्र हैं — परिवार, जाति, क्षेत्रीय नेतृत्व, मीडिया का प्रभाव और प्रशासनिक तनाव। युवा अक्सर इन निहित तंत्रों की सीमाओं में रहते हैं। जब विरोध होता है, तो वह अक्सर स्थानीय सीमाओं में नियंत्रित रहता है क्योंकि 'अराजकता' या 'विपरीत सामाजिक प्रभावों' का भय बड़ा होता है, जो बड़े पैमाने पर नागरिक अशांति को हतोत्साहित

करता है। यह डर सामाजिक ताने-बाने को बनाए रखने में एक अहम भूमिका निभाता है।

विपक्ष की चुनौती और युवाओं का मौन विद्रोह

विपक्षी दलों की रणनीति अक्सर बिखरी हुई लगती है, लेकिन सोनम वांगचुक का आंदोलन दिखाता है कि स्वतंत्र नेतृत्व और सामाजिक मुद्दों पर आधारित लामबंदी भी प्रभावी हो सकती है। लद्दाख में न तो कोई बड़ा राजनीतिक दल मुखर था और न ही चुनावी समीकरणों का दबाव, फिर भी युवाओं और स्थानीय समाज ने एकजुट होकर लोकतांत्रिक तरीकों से अपनी आवाज़ बुलंद की। यह मौन विद्रोह उस भारतीय परिदृश्य को दर्शाता है जहाँ संगठनहीन विपक्ष के बावजूद जनता स्वयं मुद्दे तय करती है और उन्हें राष्ट्रीय बहस का हिस्सा बना देती है। यह संकेत है कि भारत के युवाओं को संगठित करने की क्षमता केवल राजनीतिक दलों तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और पर्यावरणीय आंदोलनों में भी निहित है।

भारत के विपक्षी दलों ने पड़ोसी देशों में हुए जेन-ज़ेड आंदोलनों को देखते हुए, ऐसे ही आंदोलनों की गुंजाइश भारत में भी तलाशने की कोशिश की है। उन्होंने बेरोजगारी, शिक्षा और आर्थिक असमानता जैसे मुद्दों पर युवाओं की नाराजगी को भुनाने का प्रयास किया है। हालांकि, उन्हें भारतीय जेन-ज़ेड से अपेक्षित प्रतिक्रिया नहीं मिली है, जिसके कई कारण हैं:

विरोधी दलों की रणनीति में कमी और विश्वसनीयता का संकट: विपक्षी दलों में, खासकर कांग्रेस में, अक्सर एक ठोस रणनीति का अभाव दिखता है, विशेषकर युवाओं को संगठित करने और उनकी चिंताओं को राष्ट्रीय आंदोलन में बदलने के लिए। राहुल गांधी जैसे युवा नेता स्वयं को नेतृत्व की एक नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन उनके संवाद के पुराने ढंग, संचार की बाधाएँ और मीडिया तथा प्रवर्तन तंत्र का दबाव उनके विरोध प्रदर्शनों को सीमित कर देता है। विपक्षी दलों के बीच एकता की कमी और विश्वसनीयता का संकट भी युवाओं को उनके साथ जुड़ने से रोकता है।

युवा जनसंख्या का विचलित होने का पैटर्न और डिजिटल असंतोष: भारतीय युवा सोशल मीडिया पर अत्यधिक सक्रिय हैं और अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। लेकिन यह अभिव्यक्ति अक्सर 'निराशा', 'वोट बॉयकॉट' या 'नोटा' के रूप में होती है, बजाय इसके कि वे बड़े पैमाने पर सड़क पर उतरकर राज्य व्यवस्था को पलटने की ताकत या संसाधन जुटा सकें। उनके असंतोष की ऊर्जा ऑनलाइन 'मीम्स' और पोस्ट में बदल जाती है,

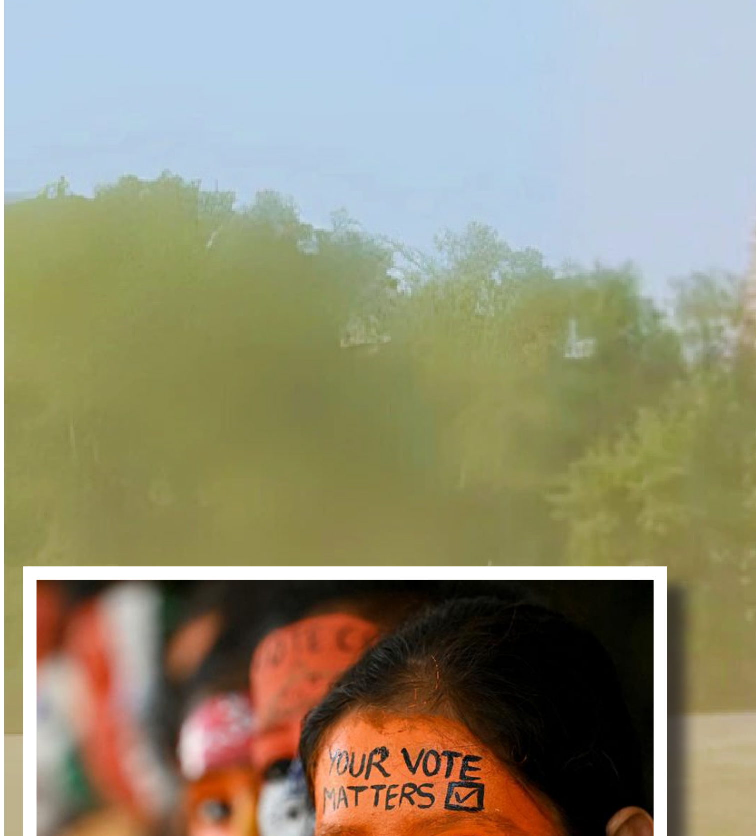

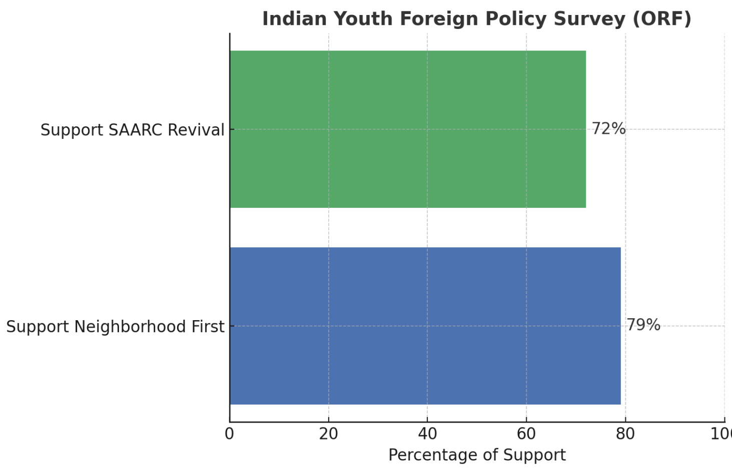

जो सड़क पर उतरने की ऊर्जा में तब्दील नहीं हो पाती।

भय और व्यक्तिगत जोखिम की गहरी अनुभूतिः प्रदर्शनों पर पुलिस कार्रवाई, सोशल मीडिया की निगरानी, वैधानिक एवं गैर-वैधानिक दबाव की संभावना, और मीडिया पर संभावित सेंसरशिप की आशंका युवा आंदोलनकारियों को जागरूक करती है कि बड़े स्तर पर सड़क पर उतरना व्यक्तिगत जोखिम भरा हो सकता है। यह 'साइलेंसिंग इफेक्ट' बड़े आंदोलनों को बनने से रोकता है, क्योंकि युवा अपने भविष्य और करियर को दांव पर लगाने से डरते हैं।

सर्वेक्षण की अंतर्दृष्टि

आबजर्बर रिसर्च फाउंडेशन (ओआरएफ) के विदेशी नीति सर्वेक्षण, जिसमें 18 से 35 वर्ष की आयु के 5,000 भारतीय युवाओं को शामिल किया गया था, से भारतीय युवाओं की अपने पड़ोस के प्रति दिलचस्प और बहुआयामी धारणाएँ सामने आती हैंः

दक्षिण एशिया का रणनीतिक महत्व और 'पड़ोस पहले' नीति की स्वीकार्यताः भारतीय युवाओं के लिए दक्षिण एशिया (36%) सबसे रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो दक्षिण पूर्व एशिया, मध्य एशिया और इंडो-पैसिफिक जैसे अन्य क्षेत्रों से अधिक है। अधिकांश भारतीय युवा (79%) मानते हैं कि भारत की 'पड़ोस पहले' नीति पर्याप्त रूप से परिभाषित है और व्यापार (86%), सुरक्षा (81%), जन-संपर्क (79%), सांस्कृतिक संबंध (75%), बुनियादी ढाँचा और कनेक्टिविटी (71%), तथा राजनीतिक जुड़ाव (68%) जैसे क्षेत्रों में काफी हद तक पर्याप्त रही है। 72% उत्तरदाताओं ने सार्क (SAARC) के पुनरुद्धार का समर्थन किया, जो क्षेत्रीय संस्थागतकरण के प्रति उनकी गहरी रुचि को दर्शाता है।

सकारात्मक धारणा और मीडिया का प्रभावः अधिकांश भारतीय युवा श्रीलंका, मालदीव, भूटान, नेपाल और बांग्लादेश

जैसे छोटे दक्षिण एशियाई देशों को सकारात्मक रूप से देखते हैं। हालाँकि, नेपाल के प्रति धारणा 2021 के सर्वेक्षण में नकारात्मक थी, जो केपी शर्मा ओली की भारत-विरोधी नीति और लिपुलेख गतिरोध के दौरान भारतीय मीडिया की नकारात्मक कवरेज के कारण थी। बाद में शासन परिवर्तन और द्विपक्षीय संबंधों में सुधार के कारण यह धारणा सकारात्मक हो गई। यह दर्शाता है कि मीडिया कवरेज, विशेषकर सीमावर्ती राज्यों में, युवाओं की धारणा को काफी हद तक प्रभावित करता है।

पहचान और राजनीतिक तनाव के प्रति प्रतिरक्षा: भारत की जटिल जातीय संरचना, आकार और संघीय ढाँचा इसे पड़ोसी देशों में अक्सर इस्तेमाल होने वाली भारत-विरोधी भावनाओं के प्रति कुछ हद तक प्रतिरक्षित करता है। पड़ोसी देशों के राजनेता और मीडिया वर्ग अक्सर राष्ट्रवादी भावनाओं को भड़काने के लिए भारत-विरोधी भावनाओं का उपयोग करते हैं, लेकिन भारत में इसकी जटिल विविधता और लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ इस तरह के एकतरफा नैरेटिव को कम प्रभावी बनाती हैं।

निराशा का क्षण: भारत को क्या सीखना चाहिए?

लद्दाख आंदोलन भारत के लिए आईना है—यह बताता है कि असंतोष केवल पड़ोसी देशों में ही नहीं, बल्कि भारत के भीतर भी पनप रहा है। सोनम वांगचुक के नेतृत्व में उठी माँगें यह दर्शाती हैं कि आज का युवा केवल सत्ता से नाराज़ नहीं है, बल्कि भविष्य की सुरक्षा और सतत विकास की गारंटी चाहता है। यह वही ऊर्जा है जो जेन-ज़ेड क्रांतियों को जन्म देती हैः अवसर, पारदर्शिता और भागीदारी। यदि भारत समय रहते ऐसे स्थानीय संकेतों को गंभीरता से नहीं लेता, तो यह निराशा बड़े आंदोलनों का रूप ले सकती है। भारत को सीखना होगा कि लोकतंत्र केवल चुनावी प्रक्रिया नहीं है, बल्कि नागरिकों की वास्तविक आकांक्षाओं को सुनने और उन्हें नीति में बदलने की सतत प्रक्रिया है।

भारत इस समय एक चौराहे पर खड़ा है। पड़ोस में 'जेन-ज़ेड' क्रांतियों को देखते हुए, भारत को आत्म-निरीक्षण करना होगा। भारत की विशालता और विविधता, जो अब तक इसे अशांति से बचाती आई है, यदि बड़े पैमाने पर असंतोष पनपता है, तो वही इसकी पतन को बढ़ा सकती है। यह केवल स्थिरता बनाए रखने का सवाल नहीं, बल्कि लोकतंत्र के नवीनीकरण और युवाओं की आकांक्षाओं को मुख्यधारा में लाने का भी है।

संवाद और भागीदारी के अवसर: भारत को अपने युवाओं की आकांक्षाओं को गंभीरता से सुनना होगा। यह सिर्फ़ योजनाएँ बनाने से नहीं होगा, बल्कि उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करने, उनके संवाद और भागीदारी के अवसर बढ़ाने से होगा। युवा मंचों, डिजिटल संवादों और जमीनी स्तर पर जुड़ाव के माध्यम से उनकी आवाज़ को सुना जाना चाहिए।

शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही: भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद, जो पड़ोसी देशों में आक्रोश का मुख्य कारण बने, भारत में भी एक चुनौती हैं। सरकार को पारदर्शिता और जवाबदेही को मजबूत करना होगा, ताकि युवाओं में व्यवस्था के प्रति विश्वास बना रहे। ई-गवर्नेंस और त्वरित न्याय प्रणाली ऐसे उपायों में शामिल हो सकते हैं।

रोजगार और आर्थिक अवसर: उच्च बेरोजगारी दर, विशेषकर युवाओं में, एक विस्फोटक स्थिति पैदा कर सकती है। भारत को समावेशी आर्थिक विकास सुनिश्चित करना होगा जो पर्याप्त और गुणवत्तापूर्ण रोजगार के अवसर पैदा करे। कौशल विकास, उद्यमिता को बढ़ावा देना और शिक्षा को बाज़ार की माँगों के अनुरूप ढालना इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम होंगे।

मीडिया की भूमिका में सुधार: भारतीय मीडिया को पड़ोसी देशों के मामलों को सनसनीखेज बनाने या राजनीतिक एजेंडे के अनुरूप ढालने के बजाय, गहन और निष्पक्ष रिपोर्टिंग पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। 'कठमांडू पोस्ट' के पूर्व संपादक दिनेश काफले के अनुसार, भारतीय मीडिया को 'मंत्रालय के विस्तार' के रूप में काम करना बंद करना चाहिए और जमीनी हकीकत को

दर्शाना चाहिए। यह न केवल क्षेत्रीय संबंधों के लिए बेहतर होगा, बल्कि भारत के भीतर भी विश्वसनीय संवाद को बढ़ावा देगा।

लोकतंत्र का निरंतर नवीनीकरण: भारत की राजनीति एक परीक्षा पर है। क्या वह केवल 'स्थिरता' बनाए रखेगी, या नवयुवा उम्मीदों को अपने एजेंडे में शामिल करेगी? यदि विकल्पों में सही समय पर बदलाव नहीं हुआ, तो पड़ोसी देशों में हो रहे विरोध प्रदर्शन केवल वहीं सीमित नहीं रहेंगे, बल्कि भारत के लिए भी एक कठोर वास्तविकता बन सकते हैं। लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए, सरकार को 'जेन-ज़ेड' की आवाज़ को सुनना होगा – देश के भविष्य के संरक्षक के रूप में। उन्हें अनदेखा करना लोकतंत्र की नींव के साथ जुआ खेलने जैसा होगा।

निष्कर्ष

दक्षिण एशिया में जेन-ज़ेड के नेतृत्व वाले आंदोलनों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि युवा पीढ़ी अपने भविष्य को पुराने राजनीतिक कुलीन वर्ग के हाथों में छोड़ने को तैयार नहीं है। यह एक स्पष्ट संदेश है कि सत्ता केवल शक्ति या चुनावों से नहीं, बल्कि जनभावना, अवसरों, पारदर्शिता और युवाओं की उम्मीदों से मापी जाएगी। भारत को अपने पड़ोसियों के अनुभव से सीखना होगा। भारत की नेतृत्व और विरोधी दोनों पार्टियों को इस यथार्थ को समझना चाहिए कि यहीं खतरा नहीं, बल्कि अवसर है। यदि भारत युवा अपेक्षाओं को बेहतर तरीके से अपनाता है, उनके संवाद और भागीदारी के अवसर बढ़ाता है, तो न केवल सामाजिक संतुष्टि बढ़ेगी बल्कि लोकतंत्र भी मजबूत होगा। जेन-ज़ेड ने एजेंडा तय कर दिया है। अब यह क्षेत्रीय नेतृत्व पर निर्भर करता है कि वह इस ऊर्जा को स्थायी और सकारात्मक दिशा देता है, या इसे अराजकता के चक्र में खो जाने देना चाहता है, जिसका भारत पर भी गंभीर प्रभाव पड़ना तय है। भारत के लिए यह एक आत्म-जागरूकता का क्षण है, जब उसे अपनी आंतरिक चुनौतियों और क्षेत्रीय गतिशीलता के बीच एक संतुलन स्थापित कर, अपने लोकतंत्र को भविष्य के लिए तैयार करना होगा।

लद्दाख की गूंज

सत्ता व स्वायत्तता की जंग

लद्दाख के ऊँचे रेगिस्तान में उठती नई पीढ़ी की आवाज़ अब केवल प्रतिध्वनि नहीं है, बल्कि सत्ता और स्वायत्तता के लिए एक ज्वलंत संघर्ष बन गई है। कर्फ्यू, विरोध प्रदर्शन और प्रशासनिक अड़चनें दर्शाती हैं कि स्थानीय आकांक्षाएँ और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच का संतुलन कितना नाजुक है। यह संघर्ष भविष्य की दिशा तय करेगा।

लद्दाख के ऊँचे रेगिस्तान में, जहाँ शांत मठ खड़ी चट्टानों से चिपके हुए हैं और हवा में प्रार्थनाएँ घुली हैं, एक अलग ही शोर ने शांति भंग कर दी है। यह शीशे टूटने की आवाज़ है, आँसू गैस के गोलों की फुफकार है, और एक पूरी पीढ़ी के गुस्से का त्रासदी में उबल पड़ना है। राज्य के दर्जे के लिए लंबे समय से सुलग रहा आंदोलन भड़क उठा है, जिसमें चार प्रदर्शनकारी मारे गए, दर्जनों घायल हुए, और लेह तथा कारगिल के प्राचीन शहर एक सख्त, दमघोंटू कर्फ्यू के साये में आ गए। यह सिर्फ़ एक और विरोध प्रदर्शन नहीं है; यह एक हिसाब-किताब का क्षण है, एक ऐसा पल जहाँ डिजिटल रूप से कुशल, वैश्विक रूप से जागरूक 'जेन ज़ेड' पीढ़ी ने यथास्थिति को चुनौती देने के लिए कमर कस ली है, और उन युवा-नेतृत्व वाले विद्रोहों की असहज याद दिला दी है

गहरे एहसास में बदल गया।

इसी भावना से, लेह एपेक्स बॉडी और कारगिल डेमोक्रेटिक अलायंस के नेतृत्व में एक एकीकृत आंदोलन चार मुख्य माँगों के इर्द-गिर्द केंद्रित हो गया। सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण माँग है पूर्ण राज्य का दर्जा, जो विधायी स्वायत्तता और अपने भाग्य पर नियंत्रण वापस पाने की एक हताश कोशिश है। दूसरी माँग है संविधान की छठी अनुसूची में शामिल होना। यह महज़ एक नौकरशाही अनुरोध नहीं है; यह एक अस्तित्व की गुहार है। छठी अनुसूची आदिवासी क्षेत्रों को स्वायत्त परिषदें प्रदान करती है, जो उन्हें बाहरी अतिक्रमण से अपनी भूमि, संसाधनों, रीति-रिवाजों और अनूठी सांस्कृतिक पहचान की रक्षा के लिए सशक्त बनाती हैं—एक ऐसा डर जो इस कम आबादी वाले क्षेत्र को सताता है।

तीसरी माँग भारत की लोकसभा में दूसरी सीट की है। एक विशाल, चुनौतीपूर्ण भू-भाग में फैले मात्र 2,74,000 से अधिक की आबादी के साथ, लद्दाखियों को लगता है कि उनकी एकमात्र आवाज़ राष्ट्रीय विमर्श में खो जाती है। अंत में, वे एक समर्पित लद्दाख लोक सेवा आयोग चाहते हैं ताकि निष्पक्ष और स्थानीय भर्ती सुनिश्चित हो सके, और उस कथित पक्षपात को समाप्त किया जा सके जिससे लंबे समय से पूर्व जम्मू-कश्मीर कैडर के उम्मीदवारों को लाभ होता रहा है।

राजनीति से परे: निराशा की परतें

इन संरचनात्मक माँगों के नीचे एक गहरी, अधिक व्यक्तिगत पीड़ा छिपी हैः सांस्कृतिक पहचान का क्षरण और आर्थिक निराशा का दंश। 2019 के बाद, नए अधिवास नियमों ने एक जनसांख्यिकीय बदलाव के डर को हवा दी है जो स्थानीय भोटी और पुरगी भाषाओं को कमज़ोर कर सकता है, जो अब अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू के साथ आधिकारिक दर्जा साझा करती हैं।

लेकिन यह नौकरी की भीषण कमी है जो युवाओं को सबसे ज़्यादा चोट पहुँचाती है। इस ऊँचाई वाले सीमांत क्षेत्र में, जहाँ पर्यटन और बागवानी सीमित और मौसमी रोज़गार प्रदान करते हैं, बेरोज़गारी दर 20 प्रतिशत से भी ज़्यादा के चौंकाने वाले स्तर पर है। सरकारी नौकरियों में स्वदेशी लोगों के लिए 85 प्रतिशत आरक्षण का वादा—एक ऐसी नीति जिसने मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश जैसे अन्य राज्यों में स्थानीय रोज़गार की सफलतापूर्वक रक्षा की है—नौकरशाही की देरी में उलझा हुआ है। स्थानीय कॉलेजों से स्नातक, आकांक्षाओं से भरे युवा, खुद को हाशिये पर पाते हैं, उनके सपने पतली पहाड़ी हवा में धूल में मिल जाते हैं। पुनर्गठित पर्वतीय विकास परिषदें, जबकि महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए प्रशंसित हैं, उन्हें केवल

जिन्होंने कई देशों की सत्ता को हिलाकर रख दिया था।

जैसे ही धुआँ छँटता है, यह अपने भविष्य की माँग कर रही एक पीढ़ी और रणनीतिक चिंताओं से जूझ रहे एक राज्य के बीच टकराव को उजागर करता है। नई दिल्ली के लिए, लद्दाख का संकट एक क्षेत्रीय अशांति से कहीं बढ़कर है; यह उसके लोकतांत्रिक वादे की परीक्षा है और एक कठोर अनुस्मारक है कि सोशल मीडिया के युग में, देश के सबसे दूरस्थ कोनों से उठी आवाज़ें भी गड़गड़ाहट के साथ गूँज सकती हैं, और सुने जाने की माँग कर सकती हैं।

असंतोष का मूल: एक अधूरा वादा

इस उथल-पुथल की जड़ें अगस्त 2019 में वापस जाती हैं, जब भारत सरकार ने अनुच्छेद 370 को निरस्त कर, जम्मू और कश्मीर राज्य को भंग कर दिया और लद्दाख को एक अलग केंद्र शासित प्रदेश बना दिया। लेह में कई लोगों ने इसे कश्मीरी प्रभुत्व से मुक्ति और केंद्र से सीधे विकास के वादे के रूप में सराहा था। फिर भी, यह आज़ादी एक कीमत पर आईः एक राज्य विधायिका का नुकसान, जिसने लद्दाख को खुद पर शासन करने की शक्ति से वंचित कर दिया। शुरुआती उत्साह जल्द ही शक्तिहीनता के एक

दिखावटी इशारों के रूप में देखा जाता है, जो वास्तविक बदलाव लाने में असमर्थ हैं। पाँच वर्षों से, यह निराशा बढ़ती रही, जिसकी परिणति इस सप्ताह देखे गए रोष में हुई।

वो चिंगारी जिसने आग लगा दी

तत्काल भड़कने का कारण गहरी सहानुभूति और हताशा का एक क्षण था। जब कार्यकर्ता सोनम वांगचुक के अनिश्चितकालीन अनशन में शामिल होने के बाद 72 वर्षीय सेरिंग आंगचुक सहित दो बुजुर्ग भूख हड़तालियों को अस्पताल में भर्ती कराया गया, तो एक कच्ची नस दब गई। यह उनकी शांतिपूर्ण दलीलों के प्रति प्रतिष्ठान की उदासीनता का प्रतीक था।

बुधवार की सुबह तक, वह सामूहिक दर्द अवज्ञा की एक लहर में बदल गया। हज़ारों लोग लेह के पोलो ग्राउंड में जमा हो गए, उनके काले झंडे साफ आसमान के खिलाफ एक स्पष्ट विरोधाभास थे, स्वायत्तता के लिए उनके नारे घाटी में गूँज रहे थे। शुरू में अनुशासित रहा विरोध, उस समय अराजकता में बदल गया जब प्रशासनिक परिसर की ओर बढ़ रहे मार्च करने वालों को अडिग पुलिस बैरिकेड्स का सामना करना पड़ा। प्रत्यक्षदर्शियों ने एक तनावपूर्ण गतिरोध का वर्णन किया है जो तब टूटा जब सुरक्षा बलों ने आँसू गैस और लाठीचार्ज का सहारा लिया। इसके बाद हुई हाथापाई में, युवाओं ने पत्थर फेंके, और एक शक्तिशाली प्रतीकात्मक कार्य में, एक स्थानीय भारतीय जनता पार्टी के कार्यालय में आग लगा दी—उन चुनावी वादों पर विश्वासघात की एक गहरी अभिव्यक्ति जो अब खोखले महसूस हो रहे थे।

स्थिति तब और भयानक हो गई जब हथियारबंद उपद्रवी तत्वों द्वारा हवा में गोलियाँ चलाने की खबरें सामने आईं। इसने अर्धसैनिक बलों से एक घातक प्रतिक्रिया को उकसाया, जिन्होंने आत्मरक्षा का दावा करते हुए गोलियाँ चला दीं। गोलियों ने अपना निशाना पाया, जिसमें दो किशोरों सहित चार लोगों की जान चली गई। सड़कें खून से लथपथ हो गईं, हवा घायलों की चीखों और आँसू गैस की तीखी गंध से भर गई। इंटरनेट ब्लैकआउट और धारा 144 लागू होने के साथ, संवाद की एक खोज एक दुखद, मूक गतिरोध में बदल गई थी।

अनदेखा रास्ता: विवेक का एक चौराहा

एक ऐसी भूमि में जो तिब्बती बौद्ध धर्म का उद्गम स्थल है, जहाँ दलाई लामा की करुणा की शिक्षाएँ हर मठ से गूँजती हैं,

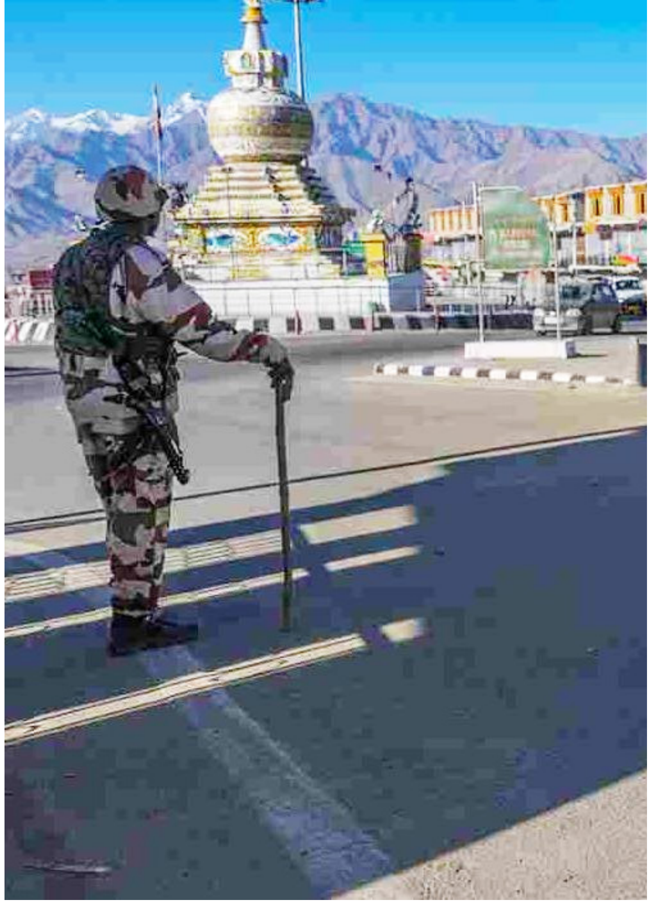

यह रक्तपात एक गहरा घाव है। लद्दाख की घाटियाँ, जो अहिंसक ऋषियों के पदचिह्नों से अंकित हैं, एक उच्च मार्ग की माँग करती हैं। हिंसा एक बंद गली है; यह केवल स्थितियों को कठोर बनाती है, दमन को आमंत्रित करती है, और उन्हीं आशाओं को दफन कर देती है जिनके लिए लड़ने का वह दावा करती है।

एक कहीं अधिक शक्तिशाली हथियार शांतिपूर्ण सत्याग्रह के शस्त्रागार में निहित है, जिसे इस 'जेन ज़ेड' पीढ़ी द्वारा स्मार्ट लामबंदी से और बढ़ाया जा सकता है। इतिहास इसकी प्रभावशीलता को साबित करता है। 2020-21 के दौरान लद्दाख में विशाल, शांतिपूर्ण मार्चों ने बिना किसी हताहत के उनके मुद्दे पर वैश्विक ध्यान आकर्षित किया, जिससे केंद्र को सुरक्षा उपायों का वादा करने के लिए मजबूर होना पड़ा। एक सधी हुई रणनीति—सर्वोच्च न्यायालय में कानूनी चुनौतियों को जोड़ना, सहानुभूति रखने वाले सांसदों के साथ गठबंधन बनाना, और आर्थिक दबाव का लाभ उठाना—पत्थरों की बौछार से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली हो सकती है।

भू-राजनीतिक संतुलन और आगे का रास्ता

नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार के लिए, स्थिति एक नाजुक संतुलन साधने जैसा है। शिकायतें वास्तविक हैं और उन्हें ईमानदारी के साथ पारदर्शी, त्रिपक्षीय मंचों में संबोधित किया जाना चाहिए। चाहे वह छठी अनुसूची के नियमों में तेजी लाना हो, लोक सेवा आयोग को फास्ट-ट्रैक करना हो, या अधिवास समय-सीमा पर पुनर्विचार करना हो, 2019 के आश्वासनों का सम्मान किया जाना चाहिए।

हालांकि, इन घरेलू चिंताओं के ऊपर भूगोल की अपरिहार्य वास्तविकता है। लद्दाख एक आक्रामक चीन के साथ एक अस्थिर सीमा साझा करता है। चल रहे तनावों के लिए यह आवश्यक है कि केंद्र को बीजिंग की घुसपैठ का मुकाबला करने के लिए सैनिकों की आवाजाही और बुनियादी ढाँचे के विकास के लिए क्षेत्र में पूर्ण, अप्रतिबंधित पहुँच हो। उनकी दृष्टि में, राज्य का दर्जा देना इस सुरक्षा अनिवार्यता को जटिल बना सकता है, खासकर अगर कोई चुनाव गैर-सहयोगी या विरोधी दल को सत्ता में ले आए।

यह जटिलता, हालांकि, निष्क्रियता या दमन को सही नहीं ठहराती। यह एक रचनात्मक और सहानुभूतिपूर्ण समाधान की माँग करती है। सरकार को राष्ट्रीय सुरक्षा को क्षेत्रीय आकांक्षाओं के साथ संतुलित करने का एक तरीका खोजना होगा। लद्दाख के युवाओं के लिए, चुनौती रणनीतिक रूप से सोचने, तख्तियों को ब्लूप्रिंट से बदलने, और अपने सपनों को भारतीय गणराज्य की जीवंत, जटिल पच्चीकारी में बुनने की है।

एक ऐसी भूमि में जहाँ लामा सार्वभौमिक शांति के लिए मंत्रोच्चार करते हैं, संवाद ही इन अशांत दर्रों पर एकमात्र पुल बना हुआ है। अब समय आ गया है कि दोनों पक्ष इस पर चलें।

द्वी-राष्ट्र समाधान

'अभी नहीं तो कभी नहीं' का क्षण

संदीप कुमार

इज़रायल-फ़िलिस्तीन संघर्ष अब उस निर्णायक मोड़ पर है, जहाँ दो-राष्ट्र समाधान ही स्थायी शांति और स्थिरता का एकमात्र विकल्प बन चुका है। एक स्वतंत्र फ़िलिस्तीनी राज्य न केवल फ़िलिस्तीनियों की आकांक्षाओं की पूर्ति करेगा, बल्कि इज़रायल की सुरक्षा, वैश्विक वैधता और लोकतांत्रिक पहचान को भी बचाएगा। भारत की संतुलित कूटनीति इस जटिल समीकरण को समझने और हल करने की एक अनुकरणीय दिशा प्रस्तुत करती है।

मध्य-पूर्व का इज़रायल-फिलिस्तीन संघर्ष केवल एक क्षेत्रीय विवाद नहीं, बल्कि दशकों से अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति, मानवाधिकार और वैश्विक भू-राजनीति की एक जटिल पहेली बना हुआ है। 1967 के अरब-इज़रायली युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा प्रस्ताव 242 पारित किया गया, जिसने 'भूमि के बदले शांति और सुरक्षा' के सिद्धांत की नींव रखी। इस सिद्धांत के अनुसार, इज़रायल को युद्ध में जीते गए क्षेत्रों को स्थायी शांति और अपनी सुरक्षा की गारंटी के बदले में वापस करना था। आधी सदी से अधिक समय बीत जाने के बावजूद, यह सिद्धांत कागजों तक ही सीमित रहा है और दोनों पक्ष किसी सार्थक समाधान पर पहुंचने में विफल रहे हैं। आज यह संघर्ष एक ऐसे निर्णायक मोड़ पर खड़ा है, जहाँ एक टिकाऊ समझौते की दिशा में प्रगति का जो छोटा सा अवसर बचा है, वह भी तेज़ी से समाप्त हो रहा है। समाधान के मार्ग में खड़ी राजनीतिक और भौतिक बाधाएँ जल्द ही उस बिंदु को पार कर सकती हैं, जहाँ से वापसी असंभव हो जाएगी।

इस वैश्विक द्वंद्व के भारतीय परिप्रेक्ष्य में, यह संघर्ष न केवल मध्य-पूर्व की स्थिरता, बल्कि व्यापक वैश्विक शांति के लिए भी गहरा महत्व रखता है। भारत ने ऐतिहासिक रूप से फिलिस्तीनी लोगों के आत्मनिर्णय और एक स्वतंत्र राज्य के अधिकार का पुरजोर समर्थन किया है, जबकि पिछले कुछ दशकों में इज़रायल के साथ अपने रणनीतिक, आर्थिक और रक्षा संबंधों को भी अभूतपूर्व रूप से मजबूत किया है। इस जटिल संतुलन में, एक गहन विश्लेषण की आवश्यकता है जो शांतिपूर्ण समाधान की संभावनाओं को उजागर करे। यह आलेख इस केंद्रीय तर्क पर आधारित है कि एक स्वतंत्र और संप्रभु फिलिस्तीनी राज्य का निर्माण केवल फिलिस्तीनियों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ही नहीं, बल्कि स्वयं इज़रायल की दीर्घकालिक सुरक्षा, वैश्विक सम्मान, आर्थिक समृद्धि और उसके लोकतांत्रिक एवं यहूदी चरित्र को बनाए रखने के लिए भी अनिवार्य है। यह एक 'अभी नहीं तो कभी नहीं' वाला क्षण है, जहाँ इज़रायल को एक साहसी और दूरदर्शी विकल्प चुनना होगा। इस

संदर्भ में, भारत की विदेश नीति, जो फिलिस्तीनी राष्ट्र के लिए अपने ऐतिहासिक समर्थन और इज़रायल के साथ बढ़ती रणनीतिक साझेदारी को सफलतापूर्वक संतुलित करती है, इस जटिल वैश्विक समीकरण को समझने और सुलझाने के लिए एक महत्वपूर्ण कूटनीतिक पाठ प्रस्तुत करती है।

इज़रायल की सुरक्षा का भ्रम और बदलती वैश्विक वास्तविकता

पहली नज़र में, इज़रायल आज अपनी सुरक्षा की दृष्टि से एक मजबूत स्थिति में प्रतीत होता है। अपनी उन्नत सैन्य क्षमताओं, अत्याधुनिक खुफिया तंत्र और प्रभावी सीमा सुरक्षा के बल पर उसने अपनी सीमाओं पर और पूरे क्षेत्र में कई पारंपरिक खतरों को काफी हद तक नियंत्रित कर लिया है। आतंकवादी समूहों और शत्रुतापूर्ण पड़ोसी राज्यों से उत्पन्न होने वाली चुनौतियाँ, यद्यपि समाप्त नहीं हुई हैं, फिर भी प्रबंधनीय लगती हैं। व्हाइट हाउस में एक दृढ़ सहयोगी की उपस्थिति इस सुरक्षा की भावना को और बल देती है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि इज़रायल ने फिलिस्तीनी राष्ट्रवाद की राजनीतिक चुनौती का सामना करने के लिए एक अभेद्य सैन्य दीवार खड़ी कर दी है।

परन्तु, क्या यह सुरक्षा स्थायी है? इतिहास इस बात का गवाह है कि केवल सैन्य शक्ति किसी गहरी राजनीतिक समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकती। विशेषज्ञों का मानना है कि यह 'शांति' एक अस्थायी भ्रम मात्र है और यह अनुकूल सुरक्षा वातावरण हमेशा के लिए नहीं बना रह सकता। भले ही वर्तमान में अमेरिकी समर्थन अटूट प्रतीत होता हो, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। यदि इज़रायल को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में देखा जाने लगा जो अंतरराष्ट्रीय कानूनों की अवहेलना करता है और दूसरे लोगों के अधिकारों का दमन करता है, तो दीर्घकालिक अमेरिकी और यूरोपीय समर्थन की गारंटी नहीं दी जा सकती। दुनिया भर में, विशेषकर युवा पीढ़ी के बीच, इज़रायल की नीतियों के प्रति बढ़ती आलोचना इस बदलते वैश्विक दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रमाण है। इज़रायल आज एक ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहाँ उसे फिलिस्तीनियों के साथ एक न्यायसंगत समझौते और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की दिशा में आगे बढ़ना होगा, या फिर उस अंतर्राष्ट्रीय समर्थन को खोने का जोखिम उठाना होगा जो उसके अस्तित्व और कल्याण के लिए अनिवार्य है। एक स्वतंत्र फिलिस्तीनी राज्य का विचार कई इज़रायलियों के लिए असहज हो सकता है, लेकिन यही उनकी सुरक्षा और समृद्धि के लिए सबसे ठोस उम्मीद भी है।

अतीत की असफलताएँ और वर्तमान की गहरी होती बाधाएँ

इज़रायल और फिलिस्तीनी नेतृत्व कई मौकों पर 'भूमि के बदले शांति' के सिद्धांत पर आधारित समझौते के बहुत करीब आए। ओस्लो समझौते से लेकर कैंप डेविड शिखर वार्ता तक, आशा की किरणें कई बार जगीं,

इस गतिरोध की मानवीय कीमत भयावह रही है। आज वेस्ट बैंक और गाजा में पांच मिलियन से अधिक फिलिस्तीनी इज़रायली नियंत्रण में रहने को मजबूर हैं, जो उनके आत्मनिर्णय के अधिकार का हनन है। इससे भी अधिक चिंताजनक बात यह है कि ज़मीनी हकीकत इतनी बदल चुकी है कि आज एक राजनयिक समाधान तक पहुँचना अतीत की तुलना में कहीं अधिक कठिन हो गया है।

लेकिन हर बार वे निराशा के अंधकार में विलीन हो गईं। इस दशकों लंबी कूटनीतिक विफलता के पीछे कई जटिल कारण हैं। फिलिस्तीनी नेताओं, जिनमें यासिर अराफात और उनके उत्तराधिकारी शामिल हैं, को यरूशलेम की स्थिति, फिलिस्तीनी शरणार्थियों की वापसी के अधिकार और क्षेत्रीय रियायतों जैसे संवेदनशील मुद्दों पर समझौता करने में भारी राजनीतिक दबाव का सामना करना पड़ा। उनकी आंतरिक राजनीतिक कमजोरियों और हमास जैसे कट्टरपंथी समूहों के उदय ने उन्हें साहसिक निर्णय लेने से रोका, जो एक यहूदी राज्य के अस्तित्व को ही अस्वीकार करते हैं।

इस गतिरोध की मानवीय कीमत भयावह रही है। आज वेस्ट बैंक और गाजा में पांच मिलियन से अधिक फिलिस्तीनी इज़रायली नियंत्रण में रहने को मजबूर हैं, जो उनके आत्मनिर्णय के अधिकार का हनन है। इससे भी अधिक चिंताजनक बात यह है कि ज़मीनी हकीकत इतनी बदल चुकी है कि आज एक राजनयिक समाधान तक पहुँचना अतीत की तुलना में कहीं अधिक कठिन हो गया है। इसमें सबसे बड़ी बाधा वेस्ट बैंक में इज़रायली बस्तियों का अनियंत्रित विस्तार है। लगभग 140 सरकार द्वारा अधिकृत बस्तियाँ और 200 से अधिक अनधिकृत चौकियाँ, जिनमें 500,000 से अधिक इज़रायली बस चुके हैं, एक व्यवहार्य और सन्निहित फिलिस्तीनी राज्य के निर्माण के मार्ग में विशाल भौतिक और राजनीतिक अवरोधक बन गई हैं। हर नई बस्ती के निर्माण के साथ इस समाधान के प्रति राजनीतिक प्रतिरोध बढ़ता है और भविष्य में किसी भी समझौते की लागत भी बढ़ जाती है।

इसके साथ ही, इज़रायली राजनीति में भी एक गहरा संरचनात्मक बदलाव आया है। राजनीतिक वामपंथी दल, जो कभी शांति प्रक्रिया के ध्वजवाहक थे, कमजोर पड़ गए हैं, जबकि दक्षिणपंथी और अति-दक्षिणपंथी शक्तियों का प्रभुत्व बढ़ा है। 7 अक्टूबर, 2023 को हमास द्वारा किए गए क्रूर हमले ने इस प्रवृत्ति को और तेज कर दिया है। प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू की वर्तमान गठबंधन सरकार, जो अति-दक्षिणपंथी धार्मिक राष्ट्रवादियों के समर्थन पर टिकी है, इस बदलाव का प्रतीक है। आज, कई इज़रायली, जिनमें नेतन्याहू के युद्ध संचालन के

आइकॉनिक 1993 ओस्लो समझौते पर हस्ताक्षरः यासर अराफात, यित्ज़ाक राबिन और बिल क्लिंटन की उपस्थिति मध्य पूर्व में स्थायी शांति के लिए एक क्षणिक आशा का प्रतीक बनी।

आलोचक भी शामिल हैं, एक फिलिस्तीनी राज्य का दृढ़ता से विरोध करते हैं। उन्हें डर है कि यह आतंकवादियों के लिए एक नया अड्डा बन जाएगा। इन सब के परिणामस्वरूप, दो-राज्य समाधान की मृत्यु की घोषणा एक आम बात हो गई है, और यह कहना गलत नहीं होगा कि यह समाधान फिलहाल जीवन-रक्षक प्रणाली पर है।

इज़रायल के अपने हित में क्यों है एक स्वतंत्र फिलिस्तीनी राज्य?

इन निराशाजनक परिस्थितियों के बावजूद, दो-राज्य समाधान अभी भी पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है। एक व्यवहार्य, स्वतंत्र, संप्रभु और असैन्यीकृत फिलिस्तीनी राज्य, जो इज़रायल के लिए सुरक्षा खतरा पैदा न करे, दोनों पक्षों के लिए सबसे बेहतर विकल्प बना हुआ है। इसके कई रणनीतिक लाभ स्वयं इज़रायल के लिए हैं:

सुरक्षा और जवाबदेहीः आज हमास जैसे आतंकवादी समूह बिना किसी जवाबदेही के काम करते हैं, क्योंकि वे किसी क्षेत्र या अर्थव्यवस्था के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। इसके विपरीत, एक संप्रभु फिलिस्तीनी सरकार को इज़रायल पर होने वाले किसी भी हमले के सैन्य और आर्थिक परिणामों का सामना करना होगा। ऐसे हमले आतंकवादी कार्य नहीं, बल्कि युद्ध के कार्य माने जाएंगे, जिससे एक जिम्मेदार सरकार को ऐसे कृत्यों से बचने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

अंतर्राष्ट्रीय अलगाव से बचावः 7 अक्टूबर के हमले के बाद मिली शुरुआती अंतर्राष्ट्रीय सहानुभूति, गाजा में हजारों फिलिस्तीनी नागरिकों की मौत और मानवीय संकट के कारण लगभग समाप्त हो गई है। एक फिलिस्तीनी राज्य के निर्माण की दिशा में कदम उठाने से इज़रायल इस वैश्विक अलगाव से बच सकता है और अपनी अंतरराष्ट्रीय वैधता को पुनः स्थापित कर सकता है।

क्षेत्रीय एकीकरण और अब्राहम समझौतेः फिलिस्तीनी मुद्दे का समाधान अरब देशों, विशेष रूप से सऊदी अरब के साथ इज़रायल के संबंधों को सामान्य बनाने की कुंजी है। सऊदी क्राउन प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान ने स्पष्ट किया है कि इज़रायल के साथ पूर्ण संबंध तभी संभव हैं जब फिलिस्तीनी राज्य की दिशा में ठोस प्रगति हो।

लोकतांत्रिक

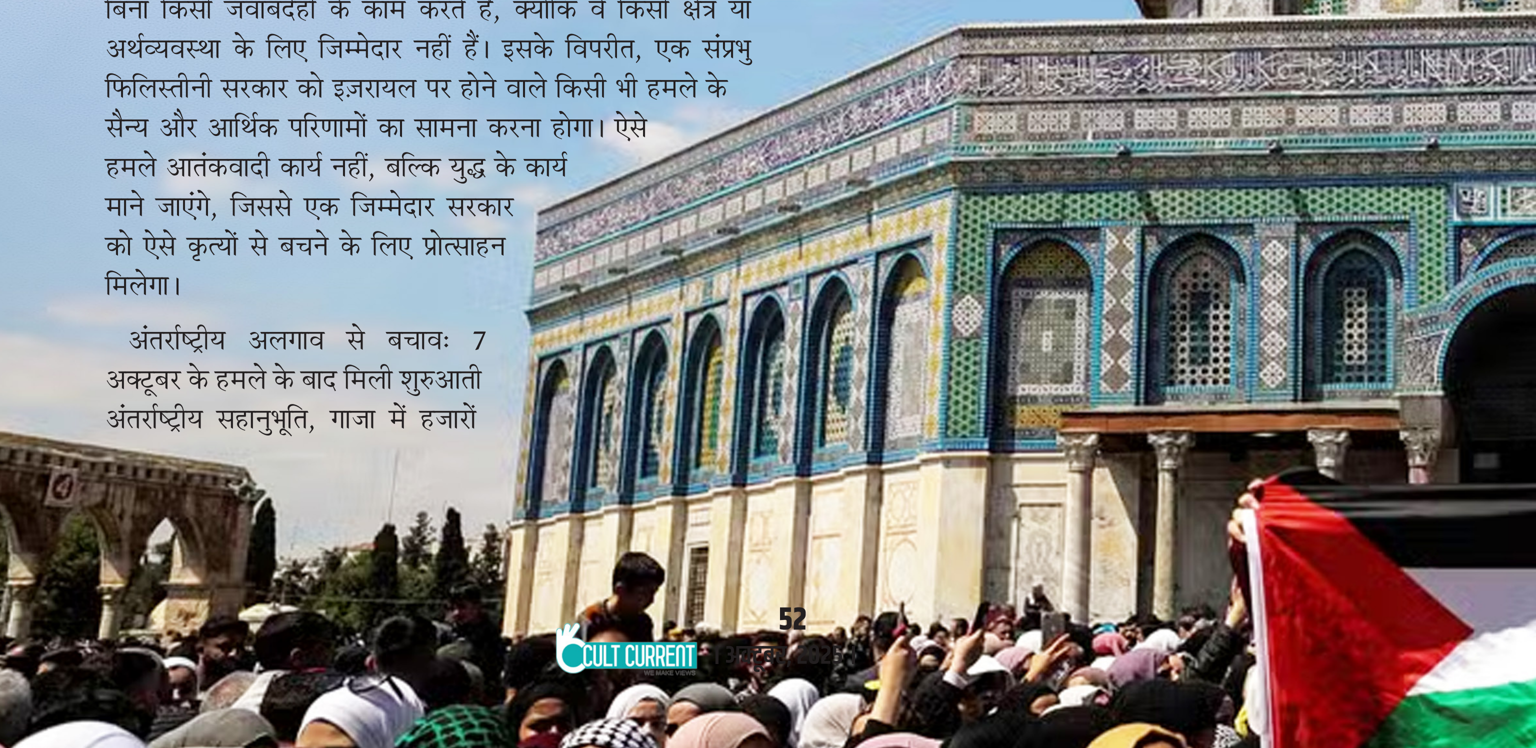

और यहूदी पहचान का संरक्षणः एक स्वतंत्र फिलिस्तीनी राज्य इज़रायल को उस दुविधा से मुक्त करेगा कि वह एक लोकतंत्र और एक यहूदी राज्य दोनों एक साथ कैसे बना रह सकता है। लाखों फिलिस्तीनियों पर अनिश्चित काल तक शासन करना इज़रायल के लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करता है, जबकि उन्हें समान अधिकार देना उसके यहूदी चरित्र को खतरे में डाल सकता है।

गाजा से बाहर निकलने की रणनीतिः दो-राज्य समाधान की दिशा में एक स्पष्ट राजनीतिक मार्ग प्रस्तुत करना ही गाजा में इज़रायली कब्जे को समाप्त करने, एक अरब स्थिरीकरण बल को तैनात करने और हमास के राजनीतिक एकाधिकार को तोड़ने का एकमात्र व्यावहारिक तरीका है। यह शेष बंधकों की वापसी का मार्ग भी प्रशस्त करेगा।

समाधान की दिशा में एक व्यावहारिक दृष्टिकोण: 'कम ही अधिक है'

वर्तमान राजनीतिक वास्तविकताओं को देखते हुए, तत्काल एक अंतिम समझौते पर पहुँचना असंभव लगता है। इसलिए, निकट भविष्य का उद्देश्य अधिक महत्वाकांक्षी कूटनीति की संभावना को जीवित रखना और ऐसी परिस्थितियाँ बनाना होना चाहिए जो भविष्य में इसे सफल होने का अवसर दें। इस नीति के दो आयाम होने चाहिएः परिहार और सृजन।

पहला, बाहरी शक्तियों को फिलिस्तीनी राज्य को एकतरफा मान्यता देने से बचना चाहिए। ऐसा करना हमास जैसे कट्टरपंथी समूहों को पुरस्कृत करने जैसा होगा और यह इस विचार को कमजोर करेगा कि राज्य का दर्जा बातचीत और आपसी समझौते के माध्यम से ही हासिल किया जा सकता है।

दूसरा, इज़रायली एकतरफावाद का भी कड़ाई से विरोध किया जाना चाहिए। यहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। अमेरिका को नई बस्तियों, चौकियों के निर्माण और फिलिस्तीनी क्षेत्र के किसी भी विलय के प्रति अपने विरोध को स्पष्ट करना चाहिए। वाशिंगटन को यह संदेश देना होगा कि यदि इज़रायल अमेरिकी प्राथमिकताओं की अनदेखी करता है, तो वह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में अपने वीटो का उपयोग करके उसे हमेशा नहीं बचा पाएगा।

इसके साथ ही, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय और अरब देशों को मिलकर एक बड़ी राजनयिक प्रक्रिया की सार्वजनिक दृष्टि प्रस्तुत करनी चाहिए। उन्हें यह स्पष्ट करना चाहिए कि वे दोनों पक्षों से क्या उम्मीद करते हैं और बदले में उन्हें क्या मिलेगा। इसमें इज़रायल को सुरक्षा आश्वासन और एक नए फिलिस्तीनी राज्य को राष्ट्र-निर्माण के लिए आर्थिक और तकनीकी सहायता प्रदान करना शामिल होगा।

भारत की 'संतुलन साधती' विदेश नीतिः एक अनुकरणीय मॉडल

इस जटिल भू-राजनीतिक परिदृश्य में भारत की विदेश नीति एक अद्वितीय और अनुकरणीय मॉडल प्रस्तुत करती है। दशकों तक, भारत ने अपने उपनिवेशवाद-विरोधी इतिहास और गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नेता के रूप में फिलिस्तीनी राष्ट्र के आत्मनिर्णय के अधिकार का दृढ़ता से समर्थन किया। जवाहरलाल नेहरू के समय से ही यह भारत की नैतिक और ऐतिहासिक प्रतिबद्धता का हिस्सा रहा है।

हालांकि, शीत युद्ध की समाप्ति और 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद भारत की विदेश नीति में एक व्यावहारिक मोड़ आया। 1992 में इज़रायल के साथ पूर्ण राजनयिक संबंधों की स्थापना इस बदलाव का एक महत्वपूर्ण प्रतीक थी। शुरुआत में, ये संबंध कृषि, जल प्रबंधन और प्रौद्योगिकी पर केंद्रित थे, लेकिन जल्द ही इनका विस्तार रक्षा और रणनीतिक सहयोग तक हो गया। आज भारत इज़रायल के सबसे बड़े रक्षा ग्राहकों में से एक है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इज़रायल के साथ अपने संबंधों को गहरा करते हुए भी, भारत ने फिलिस्तीनी मुद्दे पर अपनी मूल स्थिति को नहीं छोड़ा है।

पाक-सउदी समझौता

रणनीतिक झटका

कबीर तनेजा

भारत के सामने नया भू-राजनीतिक झटका है। पाकिस्तान और सऊदी अरब का रणनीतिक रक्षा समझौता, जिसमें 'हम पर हमला = दोनों पर हमला' शामिल है, नई तनाव की लकीर खींचता है। यह केवल पाकिस्तान के लिए जीत नहीं, बल्कि भारत के सुरक्षा और क्षेत्रीय प्रभाव की चुनौती भी है।

भारत एक नए भू-राजनीतिक झटके का सामना कर रहा है। पाकिस्तान और सऊदी अरब के बीच हुआ रणनीतिक रक्षा समझौता, जिसमें 'एक पर हमला दोनों पर हमला माना जाएगा' की घोषणा की गई है, नई दिल्ली में चिंता की घंटियाँ बजा रहा है। यह समझौता इस्लामाबाद के लिए महज़ एक जीत से कहीं बढ़कर है; यह तेज़ी से बदलते पश्चिम एशियाई समीकरणों में भारत की सुरक्षा, प्रभाव और रणनीतिक गणनाओं के लिए एक सीधी चुनौती पेश करता है।

पाकिस्तान और सऊदी अरब द्वारा एक रणनीतिक आपसी रक्षा समझौते के समापन की घोषणा ने, उम्मीद के मुताबिक, नई दिल्ली में बेचैनी बढ़ा दी है। बयान के उस हिस्से ने, जिसमें कहा गया है कि 'किसी भी देश के खिलाफ कोई भी आक्रामकता दोनों के खिलाफ आक्रामकता मानी जाएगी,' चिंताएँ और सवाल दोनों खड़े कर दिए हैं, खासकर भारत-सऊदी संबंधों की दिशा को लेकर।

अप्रैल 2025 में जम्मू-कश्मीर के पहलगाम में हुए आतंकवादी हमले, जिसके कारण 1971 के बाद दोनों देशों के बीच सबसे बड़ा सैन्य टकराव हुआ, के बाद भारत ने पाकिस्तान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-थलग करने के लिए एक वैश्विक राजनयिक प्रयास शुरू किया है। हालाँकि, पाकिस्तान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-थलग

करने का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया है। सऊदी-पाकिस्तान समझौता तब से इस्लामाबाद की टोपी में एक और पंख है।

मई में, जब पाकिस्तान के अंदर आतंकवादी शिविरों को सैन्य रूप से निशाना बनाने के लिए 'ऑपरेशन सिंदूर' शुरू किया गया, तो सऊदी अरब और ईरान के राजनयिक नई दिल्ली में थे क्योंकि सीमा पार से मिसाइलें उड़ने लगी थीं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इस अवधि के दौरान एक आधिकारिक यात्रा पर रियाद में थे और आतंकी हमले के कारण भारत वापस लौट आए थे। सऊदी अरब के विदेश राज्य मंत्री, आदेल अल-जुबैर, जल्द ही विदेश मंत्री एस. जयशंकर से मिलने के लिए पहुँचे। लेकिन श्री आदेल अल-जुबैर की प्रधानमंत्री कार्यालय में हुई बैठक ने सबका ध्यान खींचा, और जबकि दोनों पक्ष चुप रहे, रियाद ने, पूरी संभावना है, एक बढ़ती हुई स्थिति को शांत करने की कोशिश की।

भू-राजनीतिक परिवर्तनों से जुड़ा एक नया अध्याय

दक्षिण एशिया से परे, उपरोक्त घटनाएँ पश्चिम एशिया में कई मोर्चों पर खुल रहे भू-राजनीतिक घमासान की एक खिड़की भी हैं, जो अक्टूबर 2023 में हमास द्वारा इज़राइल के खिलाफ किए गए आतंकी हमले के बाद से हो रहा है, जिसने पूरे व्यापक क्षेत्र में रणनीतिक गणनाओं को फिर से उन्मुख करने के लिए प्रेरित किया है। सितंबर तक आते-आते, रियाद-इस्लामाबाद समझौते को कम करके आंका जा रहा है, लेकिन इसके व्यापक भू-राजनीतिक प्रभाव हैं।

रियाद के लिए भारतीय हित परिधीय हैं, लेकिन पाकिस्तान के लिए, यह सौदा एक तीर से दो शिकार करता है। यह साम्राज्य के साथ खोई हुई चमक को फिर से जगाता है और साथ ही नई दिल्ली की सुरक्षा चिंताओं को चुनौती देता है।

यह समझौता उस तनावपूर्ण समय के बाद सामान्य स्थिति में वापसी का भी प्रतीक है जो साम्राज्य और पाकिस्तान, इस्लामी दुनिया की एकमात्र परमाणु हथियार शक्ति, के बीच था। 2015 में, तत्कालीन नवाज शरीफ सरकार ने यमन में ईरान समर्थित हूती मिलिशिया के खिलाफ सऊदी के अभियान में शामिल होने के लिए सैनिक भेजने से इनकार कर दिया था। दशकों से, सऊदियों ने पाकिस्तानी सेना को, जिसके पास युद्ध में व्यापक वास्तविक दुनिया का अनुभव है—जिसमें से अधिकांश भारत के खिलाफ आया है—अपनी घरेलू और क्षेत्रीय सुरक्षा को मजबूत करने के लिए सबसे अच्छी ताकत के रूप में देखा है। इसके अलावा, संयुक्त राज्य अमेरिका को पश्चिम एशिया में एक अविश्वसनीय सैन्य भागीदार के रूप में देखे जाने के साथ, रियाद अपने पारंपरिक ठिकानों पर वापस खरीदारी कर रहा है। इस्लामाबाद के लिए, परमाणु फ़ाइल एक बार फिर लाभांश दे रही है, यद्यपि यह डिज़ाइन के बजाय संयोग का मामला अधिक है। फिर भी, इसकी प्रभावशीलता वाशिंगटन से लेकर रियाद तक प्रदर्शित हुई है।

बुनियादी रिश्ते और भारत के लिए संदेश

सतह से परे, सऊदी-पाकिस्तान समझौता अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में हो रहे कई बदलावों का प्रतिनिधि है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, भारत की पश्चिम एशिया तक बढ़ती पहुँच की एक गलत समझ है कि इस्लामाबाद और अरब राज्यों के बीच एक संस्थागत कील लगाई जा सकती है। ये द्विपक्षीय संबंध इस्लाम, विचारधारा और धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित हैं। सऊदी और पाकिस्तान के मामले में, यह सुन्नीवाद के इर्द-गिर्द एक और मजबूती है। इस रिश्ते की बुनियाद अटूट है। दूसरा, रियाद अब रणनीतिक स्वायत्तता, बहुध्रुवीयता और बहु-संरेखण का पीछा कर रहा है, जो सभी भारत के घोषित विदेश नीति के उद्देश्य और सिद्धांत हैं जिन्हें वह एक प्रमुख शक्ति बनने के लिए अपने मूल सिद्धांतों के रूप में लागू करना चाहता है। यह खाका कई अन्य लोगों के लिए आकांक्षात्मक है, और अक्सर, प्रमुख भागीदार राज्यों को भारतीय रणनीतिक हितों के विपरीत छोर पर खड़ा कर देगा।

'इस्लामिक बम' की केंद्रीयता के लिए सऊदी-पाकिस्तान के औपचारिकीकरण द्वारा उठाई गई चुनौती, जो 1980 के दशक की शुरुआत में पाकिस्तानी प्रेस द्वारा गढ़ा गया एक शब्द था, शायद बहुत बड़ी न हो, लेकिन यह इस बात का एक ट्रेलर है कि भू-राजनीतिक शतरंज की बिसात कैसे बिछाई जा रही है। यह भारत के लिए एक मुख्य चुनौती का भी प्रतिनिधित्व करता है, कि इसकी सांस्कृतिक रूप से जोखिम-से-बचने वाली रणनीतिक सोच और जिस धीमी गति से यह बदल रही है, वह प्रचलित वास्तविकताओं से तेजी से अलग होती जा रही है। भारतीय नेतृत्व को सत्ता के आलिंगन और लामबंदी दोनों के साथ आने वाले जोखिमों को स्वीकार करने की आवश्यकता है। अन्यथा, यदि बाड़ पर बैठना ही चुना हुआ रास्ता बना रहता है और 'मुख्य शांतिवादी' की भूमिका निभाने का एक आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाया जाता है, तो भारत के रणनीतिक विकल्प बाधित हो जाएँगे और वह अपनी पकड़ खोने का जोखिम उठाएगा।

दुनिया को फिर से आकार दिया जा रहा है और यह इस बात का इंतजार नहीं करेगी कि भारत कब मानता है कि 'उसका समय' आएगा। सऊदी-पाकिस्तान समझौता इस्लामाबाद—और अधिक विशेष रूप से पाकिस्तान सेना—द्वारा वैश्विक और पश्चिमी व्यवस्था में व्यवधानों और दरारों का अपने लाभ के लिए उपयोग करने का एक उदाहरण है। दुनिया के कामकाज को फिर से आकार देने का एक और अवसर शायद इस सदी में वापस न आए। अब वह समय है जब भारतीय गणनाएँ सही होनी चाहिए और उसे संकल्प के साथ कार्य करने की आवश्यकता है।

कबीर तनेजा ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में सामरिक अध्ययन कार्यक्रम में उप निदेशक और फेलो हैं। यह आलेख सर्वप्रथम 'द हिंदू' में प्रकाशित है, हम इसे पुनः साभार सहित प्रकाशित कर रहे हैं।

भारत की समुद्री छलांग

नेवी ड्राइव 2035

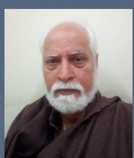

सच्चिदानंद

भारत अपनी अब तक की सबसे बड़ी नौसैनिक विस्तार योजना की ओर अग्रसर है, जिसका लक्ष्य 2035 तक 200 से अधिक युद्धपोतों का निर्माण करना है। यह महत्वाकांक्षी पहल स्वदेशी जहाज निर्माण, अत्याधुनिक हथियार प्रणालियों और रणनीतिक साझेदारियों का संगम है, जो भारत को हिंद-प्रशांत क्षेत्र में एक सशक्त समुद्री शक्ति के रूप में स्थापित करेगा। यह कार्यक्रम नई दिल्ली की सुरक्षा, आत्मनिर्भरता और क्षेत्रीय प्रभाव की प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है।

भारत 21वीं सदी में एक प्रमुख समुद्री शक्ति बनने के लिए एक महत्वाकांक्षी मार्ग तय कर रहा है। भारतीय नौसेना ने अपने इतिहास का सबसे बड़ा जहाज निर्माण कार्यक्रम शुरू किया है। यह कार्यक्रम न केवल नई दिल्ली की रणनीतिक मंशा का संकेत है बल्कि 'मेक इन इंडिया' दृष्टि के अंतर्गत आत्मनिर्भरता की प्रतिबद्धता को भी दर्शाता है। मुंबई, कोलकाता, गोवा और विशाखापत्तनम के शिपयार्ड में वर्तमान में 54 पोत निर्माणाधीन हैं। 2035 तक भारतीय नौसेना का बेड़ा 200 से अधिक

जहाजों का हो जाएगा और 2037 तक यह संख्या 230 तक पहुँच सकती है, जो विश्व के सबसे बड़े नौसैनिक विस्तारों में से एक होगी।

इतना विशाल जहाज निर्माण कार्यक्रम हिंद-प्रशांत क्षेत्र में बढ़ती समुद्री प्रतिस्पर्धा की पृष्ठभूमि में शुरू किया गया है, विशेषकर चीन की बढ़ती ब्लू-वाटर नेवी को देखते हुए। चीन के विमानवाहक पोतों, परमाणु पनडुब्बियों और विदेशी ठिकानों के तेजी से विस्तार ने भारत के लिए सामरिक चुनौतियाँ बढ़ा दी हैं। ऐसे में भारतीय नौसेना का आधुनिकीकरण केवल आकांक्षा नहीं बल्कि आवश्यकता है, ताकि समुद्री मार्गों की सुरक्षा, हिंद महासागर क्षेत्र की रक्षा और बदलते समुद्री परिदृश्य में शक्ति प्रदर्शन सुनिश्चित हो सके।

वर्तमान में भारत के पास लगभग 140 युद्धपोत हैं, जिनमें विमानवाहक पोत, विध्वंसक, फ्रिगेट, कोर्वेट और पनडुब्बियाँ शामिल हैं। प्रस्तावित विस्तार अगले दशक में इस संख्या को लगभग दोगुना कर देगा। दिसंबर 2025 तक 10 नए जहाज नौसेना में शामिल हो जाएंगे और शेष 2030 तक सेवा में आ जाएंगे। आधुनिकीकरण के तहत सुपरसोनिक ब्रह्मोस मिसाइल प्रणाली जैसे उन्नत हथियारों का एकीकरण किया जा रहा है। रूस के साथ संयुक्त रूप से विकसित ब्रह्मोस दुनिया की सबसे तेज़ क्रूज़ मिसाइलों में से एक है, जो समुद्र और स्थल दोनों लक्ष्यों पर सटीक प्रहार कर सकती है।

इस पहल के केंद्र में है स्वदेशीकरण। विदेशी आयात पर निर्भरता कम करना और घरेलू रक्षा उद्योग को सशक्त बनाना 'मेक इन इंडिया' रणनीति का प्रमुख आधार है। शिपबिल्डिंग क्षेत्र न केवल रक्षा उद्योग बल्कि इस्पात, इलेक्ट्रॉनिक्स, प्रणोदन प्रणालियों और उन्नत सामग्रियों जैसे क्षेत्रों में भी उच्च कौशल रोजगार पैदा कर रहा है। अनुमान है कि 2030 तक यह परियोजना लाखों रोजगार उत्पन्न करेगी और विदेशी आपूर्तिकर्ताओं पर निर्भरता घटाएगी।

फिर भी, अंतरराष्ट्रीय सहयोग महत्वपूर्ण बना हुआ है। रूस तकनीकी हस्तांतरण और जहाज उत्पादन में अहम भागीदार है। कालिनिनग्राद के यान्तर शिपयार्ड से आठवें क्रिवाक श्रेणी के फ्रिगेट 'तामल' की आपूर्ति एक मील का पत्थर रही, जिसमें 26% भारतीय घटक शामिल थे। इसी तरह INS तुशील जैसे प्रोजेक्ट 11356 स्टेल्थ फ्रिगेट लंबी दूरी की मारक क्षमता और उन्नत स्टेल्थ तकनीक के प्रतीक हैं। इन सहयोगों से भारत को आधुनिक विशेषज्ञता मिलती है और घरेलू उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

इस नौसैनिक विस्तार का रणनीतिक महत्व केवल रक्षा तक सीमित नहीं है। 200 से अधिक जहाजों वाला बेड़ा भारत को समुद्री मार्गों की सुरक्षा, क्वाड जैसे बहुराष्ट्रीय अभ्यासों में भागीदारी और क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्वियों का संतुलन साधने में सक्षम बनाएगा। मजबूत नौसेना भारत को पूर्वी अफ्रीका से लेकर बंगाल की खाड़ी और व्यापक हिंद-प्रशांत तक प्रभाव स्थापित करने का अवसर देती है।

हालाँकि चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। भारतीय शिपयार्ड अक्सर देरी, लागत वृद्धि और प्रशासनिक अड़चनों से जूझते रहे हैं। 54 जहाजों का समय पर निर्माण, कर्मियों का प्रशिक्षण - रखरखाव ढाँचे का विकास रक्षा-औद्योगिक तंत्र की दक्षता की परीक्षा होगी। लेकिन दांव बड़ा है। स्वदेशी उत्पादन व चुनिंदा अंतरराष्ट्रीय साझेदारी के सम्मिश्रण से

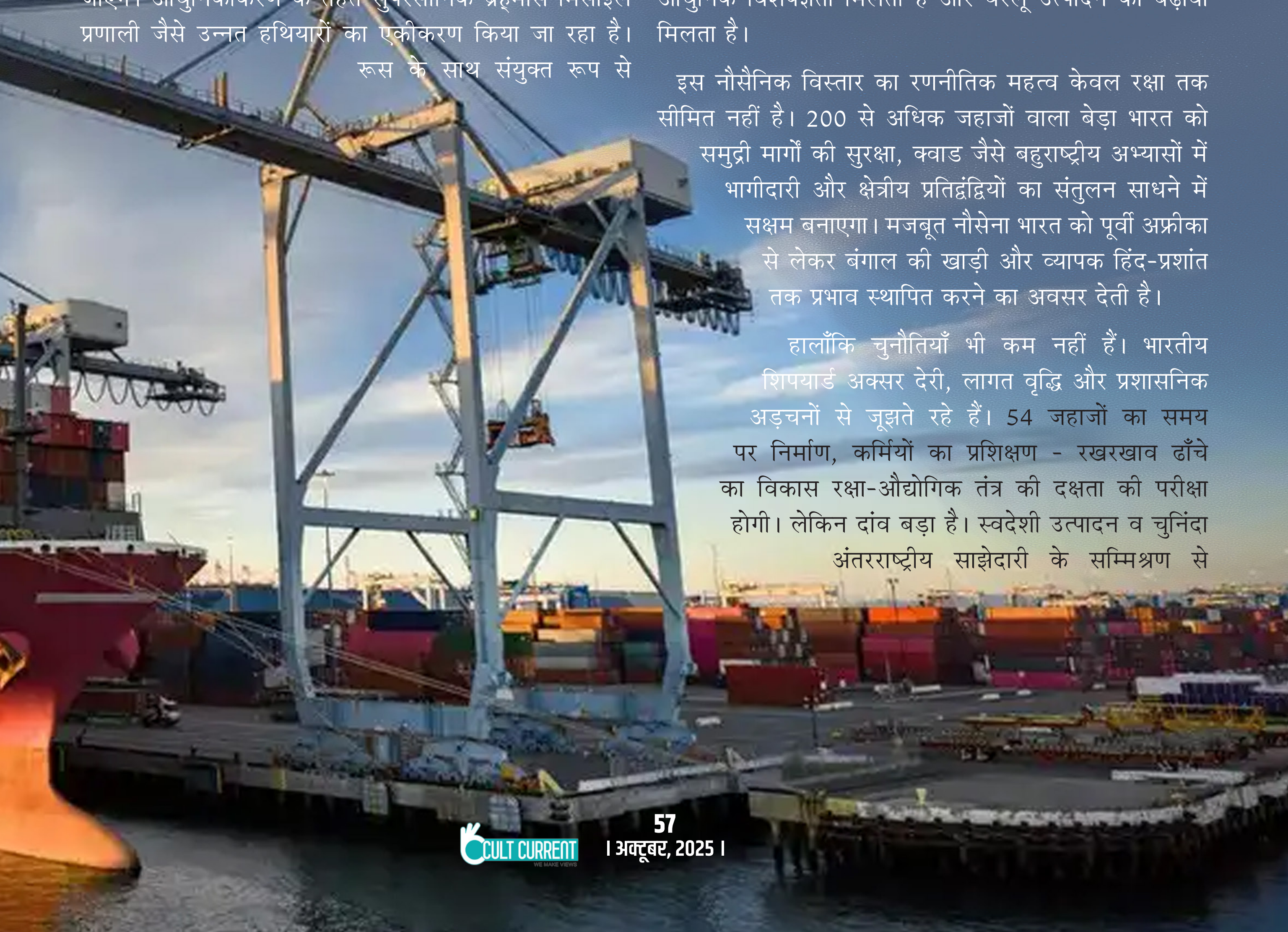

भारत समय पर उन्नत जहाजों की आपूर्ति सुनिश्चित करने व तकनीकी आत्मनिर्भरता बनाए रखने की दिशा में काम कर रहा है। यह विस्तार व्यापक रणनीतिक दृष्टि को भी दर्शाता है। भारत जानता है कि 21वीं सदी में समुद्री प्रभुत्व केवल संख्या से नहीं बल्कि क्षमताओं से तय होगा। पनडुब्बियाँ, स्टेल्थ फ्रिगेट, विमानवाहक पोत और मिसाइल-सुसज्जित सतही जहाज सामूहिक रूप से संभावित दुश्मनों के लिए निवारक शक्ति का निर्माण करते हैं। संख्या और तकनीकी प्रगति का संयोजन भारत को एक विश्वसनीय समुद्री शक्ति बनाता है।

आर्थिक दृष्टि से भी इस पहल के व्यापक लाभ हैं। शिपबिल्डिंग कार्यक्रम सहायक उद्योगों को प्रोत्साहित करता है, रक्षा तकनीक में नवाचार लाता है और आपूर्ति श्रृंखलाओं को मजबूत करता है। जटिल नौसैनिक प्लेटफॉर्म का स्वदेशी उत्पादन भारत के औद्योगिक आधार को सुदृढ़ करते हुए रणनीतिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है।

आर्थिक दृष्टि से भी इस पहल के व्यापक लाभ हैं। शिपबिल्डिंग कार्यक्रम सहायक उद्योगों को प्रोत्साहित करता है, रक्षा तकनीक में नवाचार लाता है और आपूर्ति श्रृंखलाओं को मजबूत करता है। जटिल नौसैनिक प्लेटफॉर्म का स्वदेशी उत्पादन भारत के औद्योगिक आधार को सुदृढ़ करते हुए रणनीतिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है। भारत की यह नौसैनिक पहल वैश्विक मंच पर उसकी बदलती भूमिका का प्रतीक है। जैसे-जैसे हिंद-प्रशांत क्षेत्र भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का केंद्र बन रहा है, भारत यह संदेश दे रहा है कि वह अपने समुद्री हितों की रक्षा, क्षेत्रीय प्रभाव स्थापित करने और व्यापार मार्गों की सुरक्षा के लिए पूरी तरह तैयार है।

निष्कर्षतः, भारत का यह अभूतपूर्व जहाज निर्माण कार्यक्रम उसकी रक्षा और औद्योगिक दिशा में एक निर्णायक मोड़ है। स्वदेशी उत्पादन, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और रणनीतिक दूरदृष्टि को मिलाकर भारत ऐसी नौसेना का निर्माण कर रहा है जो आधुनिक समुद्री युद्ध की मांगों को पूरा करने में सक्षम हो। चुनौतियाँ भले हों, लेकिन दृष्टि स्पष्ट है—भारत विश्व की अग्रणी नौसैनिक शक्तियों में अपना स्थान सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध है, ताकि आने वाले दशकों तक राष्ट्रीय सुरक्षा और क्षेत्रीय स्थिरता बनी रहे।

A platform dedicated to geopolitical and global affairs, as well as analysis related to India and Indianness

CULT CURRENT
WE MAKE VIEWS

Join the YouTube channel ›

अलविदा MiG-21!

छह दशकों की अमर गाथा

एयर मार्शल अनिल चोपड़ा (से.नि.)

भारतीय वायुसेना का महान 'आयरन बर्ड', **MiG**-21, छह दशकों से भी अधिक की अपनी अद्वितीय सेवा के बाद अब विदा होने को तैयार है। सुपरसोनिक उड़ान हासिल करने से लेकर भारत की हवाई युद्ध विरासत को आकार देने तक, इस प्रतिष्ठित लड़ाकू विमान ने न केवल राष्ट्र की रक्षा की, बल्कि पायलटों की पीढ़ियों को प्रशिक्षित किया और विमानन इतिहास में अपना एक स्थायी स्थान बनाया।

भारतीय वायुसेना (IAF) आखिरकार 60 वर्षों की शानदार सेवा के बाद अपने MiG-21 बेड़े को रिटायर करने के लिए पूरी तरह तैयार है। सोवियत संघ और चीन (जिसने लाइसेंस के तहत चेंगदू जे-7 संस्करण बनाया) के बाद भारत इस विमान के तीन प्रमुख संचालकों में से एक था। MiG-21 भारतीय वायुसेना का सबसे भरोसेमंद 'वर्कहॉर्स' (कार्यअश्व) रहा है। इसे 1963 में शामिल किया गया था और तब से यह लगातार सेवा में बना हुआ है। अगस्त 2019 में, जब भारतीय वायुसेना के जेट विमानों ने पाकिस्तान में जैश-ए-मोहम्मद (JeM) के

एक आतंकवादी ठिकाने पर हवाई हमले किए, जिसे बालाकोट स्ट्राइक के नाम से जाना जाता है, तो इसने दुनियाभर में सुर्खियाँ बटोरीं। उस दौरान, भारतीय वायुसेना और पाकिस्तान वायुसेना (PAF) के बीच हुए मुकाबले में, IAF के विंग कमांडर अभिनंदन वर्धमान ने एक MiG-21 बाइसन उड़ाते हुए एक पाकिस्तानी F-16 को मार गिराया था।

इस प्रतिष्ठित MiG-21 ने प्रमुख संघर्षों के दौरान भारतीय आकाश की रक्षा की। इसका रिटायर होना भारतीय लड़ाकू पायलटों की कई पीढ़ियों के लिए एक भावनात्मक क्षण है। भारतीय मीडिया महान एविएटर्स और वायुसेना के दिग्गजों की पुरानी यादों से भरा पड़ा है। इस लेखक ने स्वयं 1974 में इसी विमान में अपने युद्ध कौशल को निखारा था और 1996-2000 के दौरान रूस में MiG-21 अपग्रेड परियोजना का टीम लीडर भी था।

एक किंवदंती का निर्माण

मिकोयान-गुरेविच MiG-21 को सोवियत संघ के मिग डिजाइन ब्यूरो द्वारा एक सुपरसोनिक जेट इंटरसेप्टर विमान के रूप में डिजाइन किया गया था। MiG-21 एक ऐसा विमान था जो उस क्लासिक दृष्टिकोण का पालन करता था कि 'सबसे उत्तम, काफी अच्छे का दुश्मन है।' सोवियत संघ का उद्देश्य आसमान को हजारों सरल, हल्के और भरोसेमंद जेट विमानों से भरना था। यह रणनीति सोवियत AK-47 राइफल के साथ शानदार ढंग से काम कर चुकी थी।

चार महाद्वीपों के 60 से अधिक देशों ने MiG-21 को उड़ाया है, और यह अपनी पहली उड़ान के 65 साल बाद भी कुछ छोटी वायुसेनाओं में सेवा दे रहा है। इसने विमानन के कई रिकॉर्ड बनाए और विमानन इतिहास में सबसे अधिक उत्पादित सुपरसोनिक जेट विमान (11,496) बन गया। यह कोरियाई युद्ध के बाद सबसे अधिक उत्पादित लड़ाकू विमान था और एक समय पर, यह किसी लड़ाकू विमान का सबसे लंबा उत्पादन क्रम था, जिसे अब मैकडॉनेल डगलस F-15 और लॉकहीड मार्टिन F-16 दोनों ने पार कर लिया है। इसका छोटा भाई, ट्रांसोनिक MiG-15, लगभग 18,000 इकाइयों के उत्पादन के साथ सर्वकालिक जेट रिकॉर्ड रखता है। MiG-21 का उत्पादन 1959 से 1985 तक एक लंबे समय तक चला, और उसके बाद भारत और रोमानिया द्वारा इस विमान को अपग्रेड किया गया।

विकास और डिजाइन

MiG-21 का विकास 1950 के दशक की शुरुआत में शुरू हुआ, जब मिकोयान ओकेबी ने 1954 में Ye-1 नामक एक स्वेप्ट-विंग प्रोटोटाइप के लिए एक प्रारंभिक डिजाइन अध्ययन पूरा किया। विकास के बाद, डेल्टा-विंग वाला पहला प्रोटोटाइप Ye-4 था। इसने 16 जून, 1955 को अपनी पहली उड़ान भरी और जुलाई 1956 में मॉस्को के तुशिनो एयरफील्ड में पहली बार सार्वजनिक रूप से दिखाई दिया।

MiG-21 पहला सफल सोवियत विमान था जिसमें लड़ाकू और इंटरसेप्टर दोनों क्षमताओं का संयोजन था। यह एक हल्का मैक 2 लड़ाकू विमान था जिसमें अमेरिकी F-104 या F-5, या यहां तक कि फ्रांसीसी मिराज III की तुलना में अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली आफ्टरबर्निंग टर्बोजेट इंजन था। इसके सामने के एयर इनटेक में बहुत ही विशिष्ट शॉक कोन अद्वितीय और अजीब था, और इसने एक अच्छे आकार के रडार के लिए बहुत कम जगह छोड़ी। इंटरसेप्टर के रूप में डिजाइन किए गए कई विमानों की तरह, MiG-21 की रेंज भी कम थी।

MiG-21 के सरल नियंत्रण, इंजन, हथियार और एवियोनिक्स सोवियत-युग के सैन्य डिजाइनों के विशिष्ट थे। डेल्टा विंग के साथ टेल का उपयोग उड़ान के चरम पर स्थिरता और नियंत्रण में सहायता करता है, जिससे कम कुशल पायलटों के लिए सुरक्षा बढ़ जाती है। इसने, बदले में, सीमित प्रशिक्षण कार्यक्रमों और प्रतिबंधित पायलट पूल वाले विकासशील देशों को निर्यात में इसकी विपणन क्षमता को बढ़ाया।

इसकी अधिकतम अनुमत गति 13,000 मीटर (42,651 फीट) पर 2,237 किमी/घंटा (मैक 2.05) और समुद्र तल पर 1,300 किमी/घंटा (मैक 1.06) थी। इसकी सर्विस सीलिंग 17,500 मीटर (57,400 फीट) थी। यह विमान अर्ध-तैयार सतहों से भी संचालन कर सकता था। विमान के आयुध में 200 राउंड के साथ एक GSh-23 मिमी बंदूक शामिल थी। विमान में पांच हार्ड-पॉइंट थे, जिनकी क्षमता 2,000 किलोग्राम तक के स्टोर ले जाने की थी, जिसमें बम, रॉकेट और मिसाइल या ईंधन ड्रॉप-टैंक के संयोजन को ले जाने का प्रावधान था। बाद के संस्करणों में, इसमें नवीनतम हवा से हवा में मार करने वाली मिसाइलें जैसे R-73, R-77 और R-27 शामिल थीं। इसकी कम उत्पादन और रखरखाव लागत ने इसे कई देशों का पसंदीदा बना दिया।

सोवियत संघ में कुल 10,645 विमानों का निर्माण किया गया। इनका उत्पादन मॉस्को, गोर्की (अब निज़नी नोवगोरोड) और त्बिलिसी के कारखानों में किया गया। चेकोस्लोवाकिया में लाइसेंस के तहत कुल 194 MiG-21F-13 का निर्माण किया गया और भारत की हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (HAL) ने 657 MiG-21 वेरिएंट बनाए। चीन में लगभग 2,400 J-7 का निर्माण किया गया, जिसमें निर्यात के लिए भी शामिल थे। बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण, यह विमान बहुत सस्ता था। उदाहरण के लिए, MiG-21MF सोवियत उभयचर ट्रैक वाले पैदल सेना से लड़ने वाले वाहन BMP-1 से भी सस्ता था। अमेरिकी F-4 फैंटम की कीमत MiG-21 से कई गुना ज़्यादा थी।

भारत में परिचालन का इतिहास: एक गौरवशाली अध्याय

1961 में, भारतीय वायुसेना ने कई अन्य पश्चिमी प्रतिस्पर्धियों पर MiG-21 को खरीदने का विकल्प चुना। सौदे के हिस्से के रूप में, सोवियत संघ ने भारत को प्रौद्योगिकी का पूर्ण हस्तांतरण और स्थानीय असेंबली के अधिकार की पेशकश की। 1963 से, भारतीय वायुसेना ने 1,200 से अधिक विभिन्न मिग लड़ाकू विमानों को शामिल किया है। 1964 में, MiG-21 भारतीय वायुसेना में सेवा में प्रवेश करने वाला पहला सुपरसोनिक लड़ाकू जेट बन गया। इस बीच, सोवियत सहायता से नासिक (विमान), हैदराबाद (एवियोनिक्स) और कोरापुट (इंजन) में कारखाने स्थापित किए गए। एचएएल ने तीन वेरिएंट के 657 विमानों का उत्पादन कियाः MiG-21FL, MiG-21M, और MiG-21bis।

सीमित प्रेरण संख्या और अपर्याप्त पायलट प्रशिक्षण के कारण, 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में भारतीय वायुसेना के MiG-21 ने सीमित भूमिका निभाई। हालांकि, भारतीय वायुसेना ने बहुमूल्य अनुभव प्राप्त किया।

MiG-21 की क्षमताओं का असली परीक्षण 1971 के बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के दौरान हुआ। MiG-21 ने पश्चिमी और पूर्वी दोनों मोर्चों पर भारतीय वायुसेना को हवाई श्रेष्ठता दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1971 के युद्ध ने उपमहाद्वीप में पहले सुपरसोनिक हवाई मुकाबले को देखा जब एक भारतीय MiG-21FL ने अपनी GSh-23 ट्विन-बैरल 23 मिमी तोप से एक PAF F-104A स्टारफाइटर को मार गिराने का दावा किया। युद्ध की समाप्ति तक, भारतीय वायुसेना के MiG-21FL ने चार PAF F-104, दो शेनयांग F-6, और एक PAF लॉकहीड C-130 हरक्यूलिस को मार गिराया था।

पूर्वी क्षेत्र में, MiG-21 ने भारतीय वायुसेना के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसने अपनी जमीनी हमले की क्षमताओं के लिए 'रनवे बस्टर' का उपनाम अर्जित किया। 6 और 7 दिसंबर, 1971 को बार-बार किए गए हमलों ने ढाका के पास तेजगांव और कुरमिटोला में रनवे को सफलतापूर्वक ध्वस्त कर दिया, जिससे पूर्वी क्षेत्र में पीएएफ प्रभावी रूप से जमींदोज हो गया। 14 दिसंबर, 1971 को, तेजपुर एयरबेस से चार MiG-21 ने विंग कमांडर बिश्नोई (VrC & Bar) के नेतृत्व में ढाका में गवर्नर हाउस पर हमला किया, जिसने पाकिस्तानी सेना के आत्मसमर्पण का मार्ग प्रशस्त किया।

भारत के MiG-21 के प्रदर्शन के कारण, इराक सहित कई देशों ने MiG-21 पायलट प्रशिक्षण के लिए भारत से संपर्क किया। 1970 के दशक के अंत तक, 120 से अधिक इराकी पायलटों को भारतीय

वायुसेना द्वारा प्रशिक्षित किया जा रहा था। 10 अगस्त, 1999 को, भारतीय वायुसेना के दो MiG-21Bis ने पाकिस्तान के नौसेना वायु शस्त्र के एक अटलांटिक समुद्री गश्ती विमान को निगरानी के लिए भारतीय हवाई क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद एक हवा से हवा में मार करने वाली मिसाइल से रोककर मार गिराया, जिसमें सवार सभी लोग मारे गए।

हालांकि, विमान सुरक्षा मुद्दों से ग्रस्त रहा है। 1970 से, MiG-21 दुर्घटनाओं में 170 से अधिक भारतीय पायलट और 40 नागरिक मारे गए हैं। विमान का इंजन कुछ स्थितियों में अपनी सर्ज लाइन के बहुत करीब काम करता है, और एक छोटे पक्षी के भी अंदर चले जाने से इंजन में सर्ज/जब्ती और फ्लेम आउट हो सकता है। 11 दिसंबर, 2013 को, MiG-21FL को 50 वर्षों तक सेवा में रहने के बाद सेवामुक्त कर दिया गया। अंतिम सोवियत-निर्मित संस्करण MiG-21bis था, जिसका निर्माण 1972 और 1985 के बीच किया गया था।

MiG-21 बाइसन: एक नया अवतार

अपने परिचालन जीवन का विस्तार करने और इसे महत्वपूर्ण बहु-भूमिका क्षमता प्रदान करने के लिए, भारतीय वायुसेना ने 1990 के दशक के मध्य में, रूस में मिग डिजाइन ब्यूरो के साथ संयुक्त रूप से MiG-21 के उन्नयन का निर्णय लिया। इस विमान का नाम 'बाइसन' रखा गया।

इसमें MiG-29 का बबल कैनोपी और रैपराउंड विंडस्क्रीन; कहीं अधिक सक्षम रडार; एक हेलमेट-माउंटेड वेपन साइट; और बियॉन्ड-विजुअल-रेंज, फायर-एंड-फॉरगेट उन्नत मिसाइलें जैसे R-73 और R-77 थीं। इन और अन्य संशोधनों ने विमान की क्षमता में चार गुना वृद्धि की और इसे लगभग शुरुआती F-16 वेरिएंट के स्तर तक ले आए। इसमें एक रडार वार्निंग रिसीवर, एक आंतरिक जैमर, बेहतर एवियोनिक्स और एक नया हेड-अप डिस्प्ले भी मिला। इसे टीवी-निर्देशित बम भी मिले। कुल मिलाकर, छह स्क्वाड्रन में 125 जेट शामिल किए गए।

भारतीय अपग्रेड टीम ने मॉस्को में मिग डिजाइन ब्यूरो के साथ काम किया। भौतिक संशोधन निज़नी नोवगोरोड में 'सोकोल' एयरक्राफ्ट प्लांट में किया गया था। 45 वर्षों के सीरियल उत्पादन के दौरान इस संयंत्र ने MiG-15, MiG-17, MiG-19, MiG-21, MiG-25, MiG-29, और MiG-31 सहित लगभग 13,500 लड़ाकू विमानों का निर्माण किया।

भारतीय पायलट हरीश नयनी और फ्लाइट टेस्ट इंजीनियर वीटी नाथन ने रूस में बाइसन के परीक्षण उड़ान परीक्षण में सक्रिय रूप से भाग लिया। भारतीय टीम के रूसियों के साथ उत्कृष्ट कार्य संबंध थे, और कुछ पुराने लोगों ने भारत में नासिक में मिग संयंत्र स्थापित करने में मदद करने के लिए काम किया था। हमने एक साथ स्कीइंग, कैंपिंग और क्रूज आउटिंग भी की। अंतिम MiG-21 बाइसन एक दुर्जेय लड़ाकू विमान साबित हुआ।

'रॉक-सॉलिड एयरफ्रेम' और वैश्विक प्रशंसा

MiG-21 को विमानों का AK-47 कहा गया है। एक पूर्व MiG-21 ग्राउंड तकनीशियन ने एक बार इस लेखक को बताया था, 'रॉक-सॉलिड एयरफ्रेम।' 'वास्तव में, इस चीज़ को केवल तरल पदार्थों से ऊपर तक भरने की ज़रूरत है, और यह बस चलता जाता है।'

जब अमेरिकी वायुसेना ने MiG-21 को विरोधी विमान युद्ध प्रशिक्षकों के रूप में संचालित किया, तो उन्होंने उन्हें, एक क्रू चीफ के शब्दों में, 'बस आपकी पारिवारिक कार की तरह' पाया। 'जब तक यह ईंधन से भरा है, आप इसे गैरेज से बाहर निकालते हैं और इसे चालू करते हैं।' एक अन्य क्रू चीफ ने कहा, 'होम सॉकेट रिंच और स्क्रूड्राइवर्स के एक सेट के साथ, आप छोटे जेट पर बहुत सारे रखरखाव कर सकते थे।'

तथ्य यह है कि एक MiG-21 की कीमत सिर्फ $500,000 हो सकती है, जबकि एक दूसरे हाथ के F-16C की कीमत एक छोटे देश के लिए $15 मिलियन हो सकती है। MiG-21 या उनके चीनी-निर्मित वेरिएंट 60 से अधिक देशों में उड़ाए गए थे। शीत युद्ध के दौरान, संयुक्त राज्य अमेरिका ने कई MiG-21 वेरिएंट का अधिग्रहण किया। अमेरिकी पायलटों ने विमान की बहुत प्रशंसा की, और इसने आक्रामक प्रशिक्षण स्थितियों में पर्याप्त से अधिक प्रदर्शन किया।

वास्तव में, उच्च प्रशिक्षित अमेरिकी पायलटों ने शायद MiG-21 को अधिकांश सोवियत पायलटों की तुलना में कहीं आगे बढ़ाया। अमेरिका में अभी भी लगभग 44 निजी स्वामित्व वाले MiG-21 हैं। ड्रेकेन इंटरनेशनल ने 30 MiG-21bis/UM का अधिग्रहण किया, जो ज्यादातर पूर्व-पोलिश थे, और आखिरी बार उन्हें अभी भी संचालित करते हुए जाना जाता था।

एक अमर विरासत

रॉबर्ट फ़ार्ले ने 'नेशनल इंटरेस्ट' पोर्टल में लिखा है कि कुछ डिज़ाइन समय की कसौटी पर खरे उतरते हैं। B-52 स्ट्रैटोफ़ोर्ट्रेस ने पहली बार 1952 में उड़ान भरी थी, और इसके सेवा में एक सदी पार करने की उम्मीद है। नए C-130 उत्पादन लाइन से बाहर आते रहते हैं, जो 1954 में परिचालन में आए एक डिज़ाइन पर आधारित है। लेकिन वे बमवर्षक और परिवहन विमान हैं; वे एक-दूसरे से नहीं लड़ते। लड़ाकू विमानों को दीर्घायु की एक विशेष समस्या का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उन्हें सीधे नए मॉडलों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। इस प्रकार, बहुत कम लड़ाकू विमानों का जीवनकाल लंबा रहा है, या तो उत्पादन में या सेवा में। MiG-21 एक अपवाद था।

अधिकांश आधुनिक लड़ाकू विमान MiG-21 से बहुत तेज नहीं उड़ते हैं और न ही बहुत अधिक कुशलता से युद्धाभ्यास करते हैं। जबकि वे अधिक आयुध ले जाते हैं और अधिक परिष्कृत इलेक्ट्रॉनिक उपकरण होते हैं, कई वायुसेनाएं इन्हें विलासिता मान सकती हैं, क्योंकि वे बस एक सस्ता, तेज, आसान-से-रखरखाव वाला विमान चाहते हैं जो हवाई क्षेत्र में गश्त कर सके और कभी-कभी कुछ बम गिरा सके। MiG-21 ने इस बिल को फिट किया।

कई पायलटों ने MiG-21 उड़ाते हुए 'ऐस' का दर्जा (पांच या अधिक हवाई जीत) प्राप्त किया। वियतनाम पीपुल्स एयर फोर्स (VPAF) के गुयेन वैन कॉक, जिन्होंने MiG-21 में नौ जीत हासिल कीं, को अब तक का सबसे सफल MiG-21 पायलट माना जाता है। बारह अन्य VPAF पायलटों को MiG-21 उड़ाते हुए पांच या अधिक हवाई जीत का श्रेय दिया गया।

MiG-21 में सबसे अधिक उड़ान भरने का रिकॉर्ड भारतीय वायुसेना के एयर कमोडोर सुरेंद्र सिंह त्यागी (सेवानिवृत्त) के नाम है, जिन्होंने 6,316 उड़ानें भरीं। उनके पास विमान में सबसे अधिक उड़ान घंटों का विश्व रिकॉर्ड भी है, जो 4,306 है। जैसे ही एक महान युग का अंत हो रहा है, कुछ प्राचीन मिग अभी भी युद्ध-पक्षी उत्साही लोगों के हाथों में उड़ते रह सकते हैं, शायद आखिरी B-52 के हमेशा के लिए बंद हो जाने के बहुत बाद तक। MiG-21 की कहानी हमेशा भारतीय वायुसेना और वैश्विक विमानन के इतिहास में सुनहरे अक्षरों में लिखी जाएगी। यह एक ऐसे विश्वसनीय प्रहरी की कहानी है जिसने छह दशकों तक भारत के आसमान की रक्षा की और जिसकी गर्जना आने वाली पीढ़ियों के दिलों में हमेशा गूंजती रहेगी।

जब MiG-21 का आखिरी स्क्वाड्रन विदा होगा, तो यह सिर्फ एक विमान की सेवानिवृत्ति नहीं होगी, बल्कि एक पूरे युग का समापन होगा। उन हजारों पायलटों के लिए जिन्होंने इसके कॉकपिट में बैठकर उड़ान भरी, और उन अनगिनत तकनीशियनों के लिए जिन्होंने इसे हमेशा तैयार रखा, यह एक जीवंत साथी था—एक ऐसा साथी जिसने कभी निराश नहीं किया। एक साधारण, हल्के इंटरसेप्टर से लेकर एक दुर्जेय 'बाइसन' तक, इसका सफर भारतीय वायुसेना के विकास, अनुकूलन क्षमता और आत्मनिर्भरता का प्रतीक है। इसने हमें सिखाया कि सही रणनीति, कौशल और साहस के साथ, एक साधारण मशीन भी असाधारण परिणाम दे सकती है।

भले ही भविष्य के आधुनिक लड़ाकू विमान इसकी जगह ले लेंगे, लेकिन 'आयरन बर्ड' की विरासत, उसकी दिलेरी और भारतीय आकाश में उसकी निडर उपस्थिति को कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। यह हमेशा भारतीय शौर्य और वायुसैनिकों की अदम्य भावना का प्रतीक बना रहेगा।

एयर मार्शल अनिल चोपड़ा (सेवानिवृत्त) भारतीय वायुसेना के अनुभवी फाइटर टेस्ट पायलट रहे हैं और नई दिल्ली स्थित सेंटर फॉर एयर पावर स्टडीज़ के पूर्व महानिदेशक भी रह चुके हैं। यह लेख सर्वप्रथम आरटी न्यूज़ में प्रकाशित हुआ था, और हमें हर्ष है कि इसे पूर्ण श्रेय के साथ कल्ट करंट में प्रस्तुत किया जा रहा है।

यूरोप का औपनिवेशिक खुमार
भारत की रणनीतिक ललकार

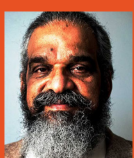

शास्त्री रामचंद्रन

मुक्त व्यापार समझौते की आड़ में, यूरोपीय संघ भारत पर अपनी औपनिवेशिक मानसिकता थोप रहा है। व्यापार से परे जाकर, वह भारत-रूस संबंधों पर शर्तें लगा रहा है। लेकिन जो 'नया भारत' अमेरिकी दबाव के आगे नहीं झुका, वह अपनी रणनीतिक स्वायत्तता पर यूरोप के इस अहंकारी उपदेश को क्यों सहेगा?

उपनिवेशवादियों की सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि उनके उपनिवेशों के आज़ाद हो जाने के दशकों बाद भी, उनकी भाषा और मानसिकता नहीं बदलती। वे आज भी खुद को दुनिया का केंद्र और बाकी देशों को अपने प्रभाव क्षेत्र का हिस्सा मानते हैं। यूरोप का यही चरित्र आज भारत के साथ एक मुक्त-व्यापार समझौते (FTA) पर बातचीत की प्रक्रिया में खुलकर सामने आ गया है।

यूरोपीय संघ (EU)—जिसका नेतृत्व ऐसे अ-निर्वाचित अधिकारी कर रहे हैं जिन्होंने तिकड़मों से सत्ता के वे पद और विशेषाधिकार हासिल कर लिए हैं जो वास्तव में संप्रभु राष्ट्रों की चुनी हुई सरकारों के होते हैं—आज खुद को एक ऐसी महा-राष्ट्रीय सत्ता के रूप में प्रस्तुत करता है जो 'कमतर' देशों पर न केवल व्यापार, बल्कि अपनी हर शर्त थोप सकती है।

शायद यूरोपीय संघ के अधिकारी यह भूल जाते हैं कि भारत अब कोई 'कमतर' देश नहीं है। इसका निर्वाचित नेतृत्व 1.4 अरब लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके पास एक विशाल बाज़ार है, और

दुनिया का हर छोटा-बड़ा देश इस बाज़ार तक अपनी पहुँच बनाना चाहता है। लेकिन, अगर यूरोपीय संघ के नेता अपने इसी आधिपत्य जमाने वाले लहजे और arrogantsur पर अड़े रहे, तो इस बातचीत से किसी समझौते का निकलना लगभग असंभव है।

शायद यूरोपीय संघ, जिसके मीडिया ने भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के साथ तियानजिन बैठक की तस्वीरें और खबरें प्रमुखता से दिखाईं, अभी तक उस संदेश को समझ नहीं पाया है जो भारत ने अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को दिया था।

बिना किसी डींग या दिखावे के, बिना किसी बयानबाजी या जवाबी कार्रवाई के, प्रधानमंत्री मोदी ने वाशिंगटन को यह स्पष्ट कर दिया था कि दिल्ली अब किसी के हुक्म को स्वीकार नहीं करेगी; और न ही वह ऊँचे टैरिफ और उससे भी ज़्यादा टैरिफ की धमकियों से डरेगी। यूरोपीय संघ के लिए यह समझना अच्छा होगा कि जो सरकार अमेरिका की अनुचित शर्तों के आगे नहीं झुकी, वह अपने वार्ताकारों के साथ भारत-रूस संबंधों जैसे मुद्दों पर चर्चा करना भी शायद अपनी तौहीन समझे। कम से कम नई दिल्ली में कुछ जानकार पर्यवेक्षक इस पूरी कवायद को इसी नजरिए से देख रहे हैं।

मुक्त व्यापार समझौते की आड़ में रणनीतिक घेराबंदी की कोशिश

भारत और यूरोपीय संघ ने इस महीने की शुरुआत में नई दिल्ली में मुक्त-व्यापार समझौते पर 13वें दौर की वार्ता की। यूरोपीय संघ के व्यापार आयुक्त मारोस शेफचोविच और कृषि आयुक्त क्रिस्टोफ़ हैनसेन भारतीय राजधानी पहुँचे। बताया गया कि हैनसेन को कृषि और डेयरी से जुड़े मुद्दों के साथ-साथ उन गैर-टैरिफ बाधाओं को दूर करने का काम सौंपा गया था, जिन्हें नई दिल्ली अपने लिए महत्वपूर्ण मानती है।

अगले दौर की वार्ता अक्टूबर में ब्रुसेल्स में होनी है। इस बीच, भारत ने यूरोपीय संघ से हिंद-प्रशांत क्षेत्र में रक्षा और सुरक्षा में एक बड़ी भूमिका निभाने का आग्रह किया। हालाँकि भारत ने अपनी अपेक्षाओं को स्पष्ट रूप से नहीं बताया, लेकिन यूरोपीय संघ ने इस अवसर का तुरंत लाभ उठाते हुए एफटीए वार्ता के दायरे को और बड़ा कर दिया। अब वह इसे 'भारत के साथ द्विपक्षीय संबंधों को एक उच्च स्तर पर ले जाने के लिए एक नए रणनीतिक एजेंडे' का हिस्सा बनाना चाहता है, जिसमें व्यापार और प्रौद्योगिकी, रक्षा और सुरक्षा, और कनेक्टिविटी और जलवायु परिवर्तन जैसे क्षेत्र शामिल हैं।

इन प्रस्तावों का अनावरण करने के बाद, यूरोपीय आयोग की अध्यक्ष उर्सुला वॉन डेर लेयेन ने प्रधानमंत्री मोदी से बात की और उन्हें 'भारत के साथ संबंधों के लिए यूरोपीय संघ के दृष्टिकोण' के बारे में जानकारी दी। प्रधानमंत्री मोदी ने 17 सितंबर को अपनाए गए इस नए रणनीतिक एजेंडे का स्वागत किया और भारत-यूरोपीय संघ संबंधों को अगले स्तर पर ले जाने की तत्परता व्यक्त की।

असल में, भारत-यूरोपीय संघ एफटीए पर बातचीत जून 2007 में ही शुरू हो गई थी, लेकिन लगभग 15 वर्षों तक इसमें कोई खास प्रगति नहीं हुई। 2022 में बातचीत फिर से शुरू हुई और डोनाल्ड ट्रंप के दूसरे कार्यकाल की शुरुआत के साथ इसमें तेज़ी आई, जब ट्रंप ने यूरोप और भारत दोनों पर टैरिफ लगा दिए। जब तक टैरिफ पर संघर्ष का समाधान नहीं हो जाता, अमेरिकी बाज़ार तक भारत की पहुँच जोखिम में है, इसलिए भारत ने कम से कम 40 अन्य देशों तक पहुँचने के लिए एक नक्शा तैयार किया है। इसी ने यूरोपीय संघ को भारत के साथ एक नए गठबंधन के लिए प्रेरित किया है, जबकि भारत का यूरोपीय मुक्त व्यापार संघ (जिसमें स्विट्ज़रलैंड जैसे गैर-यूरोपीय संघ के देश शामिल हैं) के साथ पहले से ही 100 अरब डॉलर का एफटीए है।

'अटलांटिकवादी' एजेंडा: अमेरिका के हितों के

लिए भारत पर दबाव

यूरोपीय संघ के 'अटलांटिकवादी'—यह उन अधिकारियों के लिए एक विनम्र शब्द है जिनकी प्राथमिक निष्ठा वाशिंगटन के प्रति है, न कि यूरोप या यूरोपीय राजधानियों के प्रति, जैसा कि वॉन डेर लेयेन और यूरोपीय संघ की शीर्ष राजनयिक काजा कल्लास के बारे में कहा जाता है—ट्रंप के उस एजेंडे को आगे बढ़ा रहे हैं जिसके तहत भारत को यूरोप में अमेरिकी हितों के अधीन बनाया जा सके। वे भारत को यूक्रेन का प्रभावी ढंग से समर्थन करने के अपने प्रयासों में उलझाना चाहते हैं।

प्रधानमंत्री मोदी ने स्पष्ट रूप से 'यूक्रेन संघर्ष के शीघ्र और शांतिपूर्ण समाधान' के लिए भारत की प्रतिबद्धता को दोहराया है। लेकिन यूरोपीय संघ का नेतृत्व भारत को एक रूस-विरोधी मोर्चे में घसीटना चाहता है ताकि वह यूरोप के पीछे खड़ा हो जाए, जो खुद ट्रंप के पीछे खड़ा है। यूरोप को यह निर्देश दिया गया है कि वह यूक्रेन की सैन्य जरूरतों और लक्ष्यों के लिए संसाधन जुटाए और उसे वित्त पोषित करे।

इस मोड़ पर, जब भारत ने अपनी रणनीतिक स्वायत्तता को स्पष्ट रूप से स्थापित कर दिया है, इससे ज़्यादा अहंकारी और बेतुकी बात और कोई नहीं हो सकती। जब नई दिल्ली वाशिंगटन के दबाव में नहीं झुकी, तो यह संभावना नहीं है कि वह ब्रुसेल्स के वॉन डेर लेयेन और कल्लास जैसे नौकरशाहों की बाहरी मांगों पर गंभीरता से विचार भी करेगी, जो अभी भी यह तौल रहे हैं कि क्या 'भारत को रूस से पूरी तरह अलग करना' संभव है।

यूरोप का पाखंड और दोहरे मापदंड

यूरोपीय संघ, जिसे खुद ट्रंप से टैरिफ की धमकी मिली है और जो किसी भी तरह से उनकी मांगों का विरोध नहीं कर सकता, अब एक जागीरदार की हैसियत में आ गया है। यूरोपीय संघ ने अमेरिकी सैन्य प्रतिष्ठान के हर हुक्म और उम्मीद को माना है, विशेष रूप से नाटो के पूर्व की ओर विस्तार को। इसने फिनलैंड और स्वीडन जैसे अन्य देशों को नाटो में शामिल होने के लिए अपनी लंबे समय से चली आ रही तटस्थता को छोड़ने के लिए मजबूर किया। इन देशों ने, जर्मनी की तरह, अपने सकल घरेलू उत्पाद का एक प्रतिशत रक्षा के लिए देने का वादा किया है—जिसका सीधा मतलब है अमेरिकी हथियार खरीदना।

नाटो और यूरोपीय संघ के उद्देश्यों के बीच का अंतर लगातार धुंधला होता जा रहा है। यूरोपीय संघ अब एफटीए को एक नई रणनीतिक साझेदारी से जोड़कर, भारत को रूस के साथ नाटो के गतिरोध में

खींचने की कोशिश कर रहा है। काजा कल्लास ने इस महीने रूस के 'ज़ापाद' सैन्य अभ्यास में बेलारूस के साथ भाग लेने और रूसी तेल आयात करने के लिए भारत की आलोचना की। उन्होंने कहा कि ये बातें यूरोपीय संघ के साथ 'घनिष्ठ संबंधों के रास्ते में खड़ी हैं।'

यूरोपीय संघ की अपनी आर्थिक स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है। वह एक ऐसे युद्ध में फँस गया है जिसे वह न तो जारी रख सकता है और न ही समाप्त कर सकता है, क्योंकि यह अमेरिका पर निर्भर करता है। जर्मनी, फ्रांस और इटली जैसी यूरोपीय शक्तियाँ, अपनी सारी बहादुरी के बावजूद, जानती हैं कि अमेरिका के नेतृत्व वाला पश्चिम यह युद्ध रूस से हार जाएगा। वे जानते हैं कि उनके प्रतिबंधों का रूस पर कोई खास असर नहीं हुआ है; और यही कारण है कि वे चाहते हैं कि भारत और चीन जैसे देश उन एकतरफा अमेरिकी प्रतिबंधों का पालन करें जिनकी अंतरराष्ट्रीय कानून में कोई वैधता नहीं है।

आंकड़े जो कहानी कहते हैं

यूरोपीय संघ के साथ भारत का द्विपक्षीय व्यापार लगभग 137.5 अरब डॉलर प्रति वर्ष है, जो अमेरिका के साथ व्यापार से लगभग 6 अरब डॉलर अधिक है। यह यूरोपीय संघ को भारत का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार बनाता है। हालाँकि यह भारत के निर्यात का 12% से भी कम है, और यूरोपीय संघ के आयातों का केवल 2.4% है, जो भारत को यूरोपीय संघ के व्यापारिक भागीदारों में नौवें स्थान पर रखता है।

यूक्रेन युद्ध के चार साल बाद भी, यूरोपीय संघ अमेरिकी प्रतिबंधों के बावजूद रूस के साथ अपने आर्थिक संबंध जारी रखे हुए है। 2024 में, यूरोपीय संघ-रूस व्यापार 73.1 अरब डॉलर था। 2022 से जुलाई

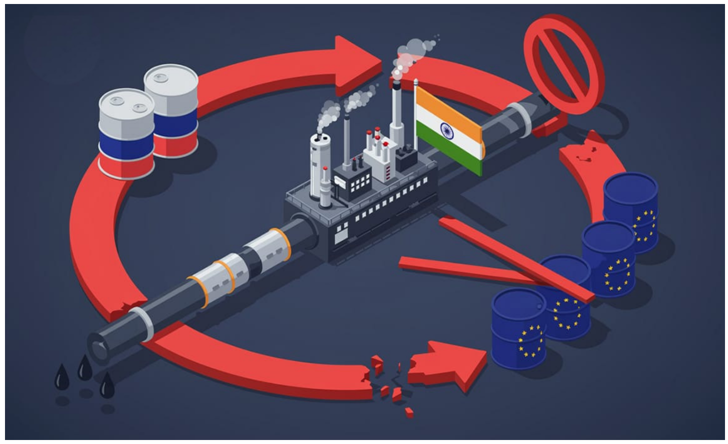

2025 की अवधि में यूरोपीय संघ रूसी तरलीकृत प्राकृतिक गैस (LNG) का सबसे बड़ा खरीदार था, जिसने रूस के LNG निर्यात का 51% खरीदा।

ऐसे में, यूरोपीय संघ का भारत से रूसी ऊर्जा की खरीद बंद करने के लिए कहना घोर पाखंड है, जो उपनिवेशवादियों और साम्राज्यवादियों के उस दोहरे मापदंड का प्रतीक है जिसे वे उन लोगों पर लागू करना चाहते हैं जिन पर वे अपना अधिकार समझते हैं। ब्रुसेल्स के एक नौकरशाह की यह अहंकारपूर्ण चेतावनी—कि यदि दोनों पक्ष रूस और यूक्रेन पर अपने रुख का पारस्परिक रूप से स्वीकार्य समाधान नहीं निकालते हैं तो कोई समझौता नहीं होगा—भारत की अर्थव्यवस्था के आकार, जनसंख्या, विकास की गति, बाजार की क्षमता और सबसे बढ़कर, रणनीतिक स्वायत्तता पर कोई समझौता न करने के संकल्प जैसी बड़ी वास्तविकताओं को नजरअंदाज करती है।

निष्कर्ष: स्वाभिमान की राह पर अडिग भारत

नई दिल्ली ने इस पर कोई तीखी प्रतिक्रिया नहीं दी है, लेकिन जिस तरह से उसने बिना शोर-शराबे के ट्रंप की बार-बार की धमकियों से निपटा, वह यूरोपीय संघ के लिए एक चेतावनी होनी चाहिए। कोई भी शक्ति या उसके स्व-नियुक्त अमेरिकी एजेंट यह तय नहीं करने वाले हैं कि रूस के साथ भारत का रिश्ता कैसा होना चाहिए। सेवानिवृत्त राजनयिकों की राय में, नई दिल्ली को ऐसे एजेंडे को स्वीकार भी नहीं करना चाहिए, और यूरोपीय संघ के साथ व्यापार वार्ता के हिस्से के रूप में किसी दूसरे देश के साथ भारत के संबंधों पर चर्चा करने का तो सवाल ही नहीं उठता। भारत का रास्ता साफ है—व्यावहारिक जुड़ाव, लेकिन अपनी शर्तों पर।

यह आलेख वरिष्ठ पत्रकार, राजनीतिक एवं विदेश मामलों के टिप्पणीकार और 'बियॉन्ड बाइनरीज़: द वर्ल्ड ऑफ इंडिया एंड चाइना' के लेखक शास्त्री रामचंद्रन द्वारा लिखा गया है। यह मूल रूप से आरटी न्यूज में प्रकाशित हुआ था, और हम इसे 'कल्ट करेंट' में साभार पुनः प्रस्तुत कर रहे हैं।

ट्रंप का H-1B दांव संरक्षणवाद या अमेरिका का आत्मघाती गोल?

संतु दास

ट्रंप द्वारा एच-1बी वीज़ा में किए गए बड़े बदलाव ने भारतीय प्रतिभा के लिए अमेरिका के दरवाजे बंद कर दिए हैं, जिससे सिलिकॉन वैली में 'ब्रेन ड्रेन' (प्रतिभा पलायन) का डर पैदा हो गया है। लेकिन इस उथल-पुथल के बीच एक ऐतिहासिक अवसर छिपा है: भारत अब दशकों पुराने इस प्रतिभा पलायन को पलट सकता है। भारत अपने नवोन्मेषकों का उपयोग कर सकता है, और इन खोए हुए सपनों' को एक स्वदेशी तकनीक और अनुसंधान क्रांति में बदल सकता है।

एच-1बी वीज़ा को सिलिकॉन वैली के अदृश्य आधार स्तंभ की तरह देखें – वह बुनियाद जिसने न केवल अमेरिका के तकनीकी उद्योग को मज़बूत और तेज़ बनाने में मदद की, बल्कि भारत के लाखों प्रतिभाशाली दिमागों को अमेरिकी प्रयोगशालाओं और स्टार्टअप्स तक पहुँचने का मार्ग भी प्रशस्त किया। यह एक दोतरफा रास्ता था: अमेरिकी कंपनियों को ऐसे कुशल श्रमिक मिले जो उन्हें अपने देश में नहीं मिल पा रहे थे, और भारतीय पेशेवरों को अपनी प्रतिभा दिखाने के लिए एक वैश्विक मंच मिला।

अब, उस सीढ़ी को भारी, महंगा और चेतावनी के चमकते संकेतों से ढक दिया गया है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप द्वारा एच-1बी वीज़ा व्यवस्था में किए गए बदलाव मामूली सुधार नहीं हैं; वे एक भू-राजनीतिक भूकंप का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह कदम, भारतीय तकनीकी निर्यात के लिए भले ही झटका हो, लेकिन यह मूल रूप से अमेरिका की प्रतिस्पर्धात्मकता, उसके नवाचार पारिस्थितिकी तंत्र और शायद उसकी वैश्विक सॉफ्ट पावर के लिए भी एक आत्मघाती घाव है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह भारत के लिए दशकों पुराने प्रतिभा पलायन को प्रतिभा अर्जन (Brain Gain) में बदलने का एक ऐतिहासिक अवसर प्रस्तुत करता है।

नीति के वेश में राजनीति: एक चुनावी दांव

इस साल, वाशिंगटन ने बदलावों का एक समूह पेश किया है जो एच-1बी परिदृश्य को मौलिक रूप से बदल देता है। व्हाइट हाउस की एक घोषणा ने प्रभावी रूप से कई एच-1बी कर्मचारियों को विदेश से लाने की प्रक्रिया पर छह अंकों का शुल्क – एक चौंका देने वाला $100,000 – लगा दिया है। साथ ही, होमलैंड सिक्योरिटी विभाग पुरानी लॉटरी प्रणाली से वेतन-भारित चयन प्रक्रिया की ओर बढ़ रहा है, जिससे उच्च-वेतन वाली नौकरियों को प्राथमिकता दी जाएगी।

आधिकारिक तर्क वही पुराना है: अमेरिकी नौकरियों की रक्षा करें, नियोक्ताओं द्वारा शोषण की जा रही खामियों को बंद करें, और अमेरिकी श्रमिकों के लिए समान अवसर प्रदान करें। ये नारे राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हैं और वोट दिलाते हैं। हालांकि, जब नीति नवाचार के जटिल गणित के बजाय दिखावे और पक्षपातपूर्ण नाटक के इर्द-गिर्द बनाई जाती है, तो परिणाम केवल समाचारों पर तो अच्छे लगते हैं लेकिन बहीखातों पर विनाशकारी होते हैं।

प्रति कार्यकर्ता $100,000 का शुल्क कम वेतन वाले या संदिग्ध नियुक्तियों को हतोत्साहित कर सकता है, लेकिन यह प्रतिभा के वैध प्रवाह को भी रोकेगा जो अनुसंधान प्रयोगशालाओं को चलाता है, स्टार्टअप्स को नवाचार करने में मदद करता है, और विश्वविद्यालयों को दुनिया के सर्वश्रेष्ठ लोगों को नियुक्त करने में सक्षम बनाता है। स्पष्ट रूप से कहें तो, यह संरक्षणवाद और राजनीतिक नाटक का मिश्रण है। नेता 'नौकरियों को घर वापस लाने' का अभियान चला सकते हैं, जबकि विदेशी भर्ती पर सख्त दिखते हैं।

लेकिन यह नीति दो असहज सच्चाइयों को आसानी से अनदेखा करती है। पहला, एच-1बी आबादी कम वेतन वाले घुसपैठियों का एकरूप समूह नहीं है। एच-1बी धारकों का औसत वेतन ऐतिहासिक रूप से राष्ट्रीय औसत से काफी ऊपर रहा है, जिसमें इंजीनियरिंग, अनुसंधान और उच्च शिक्षा में अत्यधिक विशिष्ट भूमिकाओं के लिए कई वीज़ा दिए गए हैं। दूसरा, जब अमेरिका अपने दरवाजे बंद करता है, तो प्रतिभा का वैश्विक बाज़ार रुक नहीं जाता; यह स्थानांतरित हो जाता है।

जब अमेरिका अपने दरवाजे बंद करता है, तो प्रतिभा कहाँ जाती है?

तकनीकी प्रतिभा और पूंजी तरल होते हैं। यदि अमेरिका में भर्ती

अत्यधिक कठिन और महंगी हो जाती है, तो कंपनियाँ पूरे कार्यों को विदेश में स्थानांतरित कर देंगी। वे बेंगलुरु या क्राकोव में अनुसंधान का विस्तार करेंगी, या अपने अगले यूनिकॉर्न को ऐसी जगह स्थापित करेंगी जहाँ भर्ती नीतियाँ अधिक स्वागत योग्य हों। परिणाम भारतीय इंजीनियरों से कहीं आगे तक जाएंगे; यह उस पारिस्थितिकी तंत्र का क्षरण होगा जिसने अमेरिका को अत्याधुनिक नवाचार के लिए एक चुंबक बनाया था।

विश्लेषक पहले ही चेतावनी दे रहे हैं कि ये दंडात्मक उपाय निवेश और अनुसंधान एवं विकास को विदेशों में धकेलेंगे। गणित सरल है: यदि प्रतिभा को अवरुद्ध या इतना अधिक कर दिया जाता है कि वह पहुँच से बाहर हो जाए, तो फर्म हमेशा प्रतिभा या बाज़ार का अनुसरण करेगी।

तत्काल आर्थिक लागतें गंभीर होंगी। स्टार्टअप्स, जो अक्सर नकदी की कमी पर चलते हैं, विश्व स्तर पर सर्वश्रेष्ठ इंजीनियरों को नियुक्त करने की अपनी क्षमता पर निर्भर करते हैं। भर्ती लागत में अचानक वृद्धि या आय-आधारित लॉटरी की ओर बदलाव केवल सबसे धनी निगमों के पक्ष में खेल के मैदान को झुका देगा, जिससे रोजगार सृजन के इंजनों को रोका जा सकेगा। शीर्ष पीएच.डी. छात्रों की भर्ती करने वाले विश्वविद्यालय और अनुसंधान प्रयोगशालाएं भी इसका खामियाजा भुगतेंगी। संक्षेप में, नवाचार धीमा और अधिक महंगा हो जाएगा।

सॉफ्ट पावर का क्षरण और वैश्विक प्रतिद्वंद्वियों का उदय

एच-1बी पाइपलाइन सॉफ्ट पावर का एक शक्तिशाली उपकरण भी रही है। यह अमेरिकी संस्थानों का एक वैश्विक पूर्व छात्र नेटवर्क बनाता है, जिसके सदस्य अमेरिकी मानदंड, नेटवर्क और प्रभाव को अपने गृह देशों में वापस ले जाते हैं। इस पाइपलाइन को कसने से न केवल नौकरी चाहने वालों को असुविधा होगी; यह वैश्विक व्यापार और शैक्षणिक नेताओं की संख्या को कम कर देगा जिनके प्रारंभिक वर्ष अमेरिका में आकार दिए गए थे। समय के साथ, यह अमेरिकी प्रभाव को कम करने के लिए बाध्य है।

और हाँ, जब आप सिर्फ कमरे में प्रवेश करने के लिए $100,000 का शुल्क लेना शुरू करते हैं, तो वैश्विक प्रतिद्वंद्वी निश्चित रूप से ध्यान देंगे। जबकि नीति तरल है, और ये उपाय मुकदमों या बदलती कांग्रेस द्वारा कमज़ोर किए जा सकते हैं, क्षति हो जाएगी। जो फर्म अपनी आपूर्ति श्रृंखलाओं को पुनर्गठित करती हैं और टीमों को स्थानांतरित करती हैं, वे नीति बदलने पर तुरंत अपना रास्ता नहीं बदलतीं।

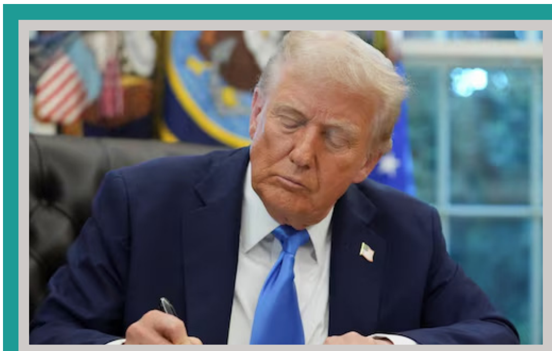

पिछले कुछ दशकों में, भारतीय समुदाय ने अमेरिका में अभूतपूर्व योगदान दिया है। क्या भारतीय अपनी इसी सफलता के शिकार बन गए हैं? क्या उन्हें उनके योगदान के लिए दंडित किया जा रहा है? क्या यह संरक्षणवाद है, या देशभक्ति के वेश में आत्म-हानि है? प्रश्न जो भी हो, उत्तर स्पष्ट है: इस खेल में, अमेरिका दीर्घकालिक रूप से अपना नुकसान कर रहा है, जबकि अनजाने में भारत के लिए एक नए भविष्य का द्वार खोल रहा है।

एलन मस्क ने एच-1बी वीज़ा का जमकर समर्थन किया है, यह कहते हुए कि, 'एच-1बी अमेरिका को मज़बूत बनाता है।' उन्होंने तर्क दिया है कि वह और कई अन्य महत्वपूर्ण नवप्रवर्तक जिन्होंने महान अमेरिकी कंपनियों का निर्माण किया, इस कार्यक्रम के कारण ही अमेरिका में हैं। उनके शब्द अमेरिका की नवाचार अर्थव्यवस्था के बारे में एक मौलिक सत्य को रेखांकित करते हैं।

अमेरिकी नीति निर्माताओं को इस बात की चिंता नहीं होनी चाहिए कि भारत को नुकसान होगा। भारत, जैसा कि हमेशा करता आया है, अनुकूलन करेगा। वास्तविक नुकसान अमेरिका के लिए होगा, क्योंकि वह अपनी प्रतिष्ठा और वैश्विक प्रतिभा पारिस्थितिकी तंत्र के प्रमुख निर्माता के रूप में अपनी भूमिका गंवा देगा। एक मज़बूत आप्रवासन नीति घरेलू श्रमिकों की सुरक्षा को उत्पादकता बढ़ाने वाले कौशल के प्रति खुलेपन के साथ संतुलित करती है। दंडात्मक, दिखावटी उपायों की ओर यह वर्तमान झुकाव उस संतुलन को अव्यवस्था में डाल देता है।

भारत का अवसर: प्रतिभा पलायन से प्रतिभा अर्जन की ओर

जब एच-1बी शुल्क पर धूल जम जाएगी, तो स्पष्ट दीर्घकालिक विजेता भारत होगा, और दीर्घकालिक हारने वाला, अमेरिका। राष्ट्रपति ट्रंप के कार्यकारी आदेश ने अमेरिकी नवाचार पर खुद ही कुल्हाड़ी मार दी है और भारत के नवाचार उद्योग को एक शक्तिशाली संजीवनी दी है।

जैसा कि सम्मानित तकनीकी उद्यमी विवेक वाधवा ने लिखा है, 'भारत के लिए, यह एक ऐतिहासिक अवसर है।' 'दशकों तक, इसके सबसे चमकीले दिमाग बाहर चले गए क्योंकि अमेरिका ही एकमात्र ऐसी जगह थी जहाँ वे अत्याधुनिक काम कर सकते थे, और एच-1बी वीज़ा उनके लिए एक पुल था।' अब, भारत एक फलता-फूलता डिजिटल अर्थतन्त्र, यूपीआई तकनीकों के साथ एक सिद्ध ट्रैक रिकॉर्ड, विश्व-स्तरीय अस्पताल व एक महत्वाकांक्षी स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र का दावा करता है।

नए वीज़ा शुल्क को निस्संदेह अमेरिका में कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। आप्रवासन वकीलों ने इसे 'स्पष्ट रूप से गैरकानूनी' कहा है, यह तर्क देते हुए कि राष्ट्रपति के पास कांग्रेस द्वारा अनिवार्य शुल्क संरचना को फिर से लिखने का अधिकार नहीं है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय में परिणाम कुछ भी हो, आदेश ने ट्रंप के राजनीतिक उद्देश्य को पहले ही पूरा कर दिया है। उनके MAGA समर्थक, जो आप्रवासन विरोधी हैं, ने इस कदम का स्वागत किया है।

ट्रंप का दूसरा उद्देश्य एच-1बी शुल्क का उपयोग भारत और चीन के साथ व्यापार वार्ताओं में मोलभाव की शक्ति के रूप में करना भी हो सकता है, जो एकमात्र दो प्रमुख अर्थव्यवस्थाएँ हैं जिन्होंने रूसी तेल खरीदने पर उनका विरोध किया है।

यह $100,000 का वीज़ा शुल्क भारत को अपने लंबे समय से चले आ रहे प्रतिभा पलायन को प्रतिभा अर्जन में बदलने का अवसर प्रदान करता है। भारतीय तकनीकी पेशेवर जो पारंपरिक रूप से ग्रीन कार्ड के रास्ते के रूप में विदेशों में नौकरी तलाशते थे, अब तेजी से भारत की विकास गाथा का हिस्सा बनने की ओर देख रहे हैं, खासकर पश्चिम में बढ़ते नस्लवाद और घर में उभरते अवसरों के सामने।

निष्कर्ष: संरक्षणवाद या आत्म-नुकसान?

राष्ट्रीय शक्ति ऊँची बाड़ लगाने से नहीं बनती; यह बेहतर सीढ़ियाँ बनाने से बनती है। एच-1बी वीज़ा कभी भी सही नहीं था; इसमें सुधार की आवश्यकता थी। इसके बजाय, इसे सुर्खियाँ बटोरने वाला एक बड़ा प्रहार मिला। वैश्विक प्रतिभा के पोर्टल को बंद करना 30 सेकंड की राजनीतिक विजय के समान लग सकता है, लेकिन यह एक ऐसे पारिस्थितिकी तंत्र को बाधित करेगा जो बाहरी प्रतिभा पर अत्यधिक निर्भर है।

भारतीय समुदाय ने पिछले कुछ दशकों में अमेरिका में शानदार योगदान दिया है। क्या भारतीय अपनी ही सफलता के शिकार बन गए हैं? क्या उन्हें उनके योगदान के लिए दंडित किया जा रहा है? क्या यह संरक्षणवाद है, या देशभक्ति के रूप में छिपा हुआ आत्म-नुकसान है? सवाल जो भी हो, जवाब स्पष्ट है: इस खेल में, अमेरिका लंबे समय में खुद को चोट पहुँचा रहा है, जबकि अनजाने में भारत के लिए एक नए भविष्य का दरवाज़ा खोल रहा है।

बिखरते सपने और नई शुरुआत की दस्तक एच-1बी वीज़ा ने भारत के लिए खोले नए द्वार?

जब अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने नए एच-1बी वीज़ा आवेदनों पर $100,000 के भारी शुल्क की घोषणा की, तो अटलांटिक के दोनों किनारों पर भारतीय समुदायों में तुरंत सदमे की लहर दौड़ गई। न्यूयॉर्क में एक स्वास्थ्यकर्मी सुमन (बदला हुआ नाम) के लिए, यह वह पल था जब उनका अमेरिकी सपना बिखरता हुआ सा महसूस हुआ। उन्होंने कहा, 'मैं पिछले आठ सालों से यहाँ काम कर रही हूँ, मैंने लोन और मॉर्टगेज लिए हैं। सब कुछ मुझ पर टूटता हुआ सा लग रहा था।'

उनकी कहानी अकेली नहीं है। तेलंगाना के मुहम्मद अनस ने बताया कि उनकी बेटी, जो अमेरिका में अमेरिका में कॉलेज शिक्षिका है, फोन पर रो रही थी। पश्चिम बंगाल के एक प्रमुख इंजीनियरिंग कॉलेज से स्नातक काजिम अहमद ने अफ़सोस जताते हुए कहा, 'लगता है मेरा अमेरिकी सपना अब दम तोड़ रहा है।' इन व्यक्तिगत त्रासदियों ने नई दिल्ली को अपनी चिंता व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया, जिसने इस कदम को एक संभावित 'मानवीय संकट' बताया जो परिवारों को अस्त-व्यस्त कर देगा।

हालांकि, भारत में उद्योग विशेषज्ञ इस कहानी का एक अलग पहलू देखते हैं। इंफोसिस के पूर्व सीएफओ मोहनदास पई ने चेतावनी दी कि ट्रंप ने 'अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार ली है' और भविष्यवाणी की कि इस कदम से अमेरिकी कंपनियों को नौकरियों को देश से बाहर स्थानांतरित करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। भारत के जी20 शेरपा अमिताभ कांत ने ट्वीट किया, 'अमेरिका का नुकसान भारत का लाभ होगा। भारत के बेहतरीन डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक और नवप्रवर्तकों के पास #विकसितभारत की दिशा में भारत के विकास और प्रगति में योगदान करने का अवसर है।'

तेलंगाना में विशेष मुख्य सचिव जयेश रंजन ने इसे 'गेम चेंजर' बताया, भविष्यवाणी करते हुए कहा कि यह 'रिवर्स ब्रेन ड्रेन' भारत को एक वैश्विक प्रौद्योगिकी केंद्र में बदल देगा।

जहां नया शुल्क हजारों भारतीय परिवारों के लिए एक दु:स्वप्न जैसा लग रहा है, वहीं भारत के नीति निर्माताओं के लिए यह एक महत्वपूर्ण अवसर का प्रतिनिधित्व करता है। यह कदम भारत के दशकों पुराने 'प्रतिभा पलायन' पर रोक लगा सकता है, जिससे सरकार और उद्योग दोनों को देश में अत्यधिक कुशल प्रतिभा को उत्पादक रूप से नियोजित करने के तरीके खोजने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। बिखरते सपनों और अनिश्चितता के बीच, एक नई शुरुआत हो सकती है, जहां भारत का भविष्य भारत में ही गढ़ा जाएगा।

संयुक्त राष्ट्र @ 80

सुधार या अप्रासंगिकता?

मनोज कुमार

जैसे ही संयुक्त राष्ट्र अपनी 80वीं वर्षगांठ मना रहा है, इसकी प्रासंगिकता पर गंभीर सवाल उठाए जा रहे हैं। सुरक्षा परिषद की ठप पड़ी बहसों से लेकर वैश्विक संकटों में इसके अधिकार की अनदेखी तक, दुनिया सुधार की माँग कर रही है। भारत जैसी उभरती शक्तियाँ एक बड़ी आवाज़ की तलाश में हैं, जबकि संयुक्त राष्ट्र को या तो खुद को आधुनिक बनाना होगा या फिर युद्ध के बाद के आदर्शवाद का एक अवशेष बनकर रह जाने का जोखिम उठाना होगा।

संयुक्त राष्ट्र, अपनी 80वीं वर्षगांठ मनाते हुए, एक ऐसे महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़ा है जहाँ विश्व शांति और कल्याण को लागू करने के लिए एक सहकारी संस्था के रूप में इसकी विश्वसनीयता और उपयोगिता गहन जांच के दायरे में है। चल रहे संघर्ष और प्रमुख शक्तियों द्वारा संयुक्त राष्ट्र को दरकिनार करने का संकल्प, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से विश्व राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों को समझने के तरीके को बदलने की क्षमता रखता है। बहुस्तरीय वैश्विक चुनौतियाँ और बदलते भू-राजनीतिक परिदृश्य संयुक्त राष्ट्र के भीतर व्यापक सुधारों की तत्काल आवश्यकता की ओर इशारा करते हैं। भारत का बढ़ता वैश्विक कद भी यह माँग करता है कि संयुक्त राष्ट्र पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर उसके स्थान और प्रभाव को उसी के अनुरूप फिर से संरेखित किया जाए।

उपलब्धियाँ और एक कठिन वर्तमान

1945 में केवल 51 सदस्य राज्यों के साथ अपनी स्थापना के बाद से, संयुक्त राष्ट्र ने शांति, सुरक्षा और सहयोग के लिए दुनिया की सामूहिक आशा का प्रतीक बनाया है, जो समय के साथ 193 सदस्य देशों को शामिल करने के लिए विस्तारित हुआ। संगठन की उपलब्धियाँ—युद्धों को कम करना, शांति स्थापना, वि-उपनिवेशीकरण को सुगम बनाना, एक नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था पर बहस करना, वैश्वीकरण पर बहस करना, ग्लोबल साउथ के मुद्दों की उचित भागीदारी सुनिश्चित करना, मानवाधिकारों का समर्थन करना, दुनिया को आसन्न पर्यावरणीय तबाही के बारे में चेतावनी देना, गरीबी से लड़ना, और मानवीय प्रयासों का समन्वय करना, और सबसे बढ़कर दो महाशक्तियों की तीव्र प्रतिद्वंद्विता से बचना और शीत युद्ध के बाद के व्यवस्था को अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण दुनिया में बदलना—महत्वपूर्ण मील के पत्थर बने हुए हैं। फिर भी, वर्तमान दशक संरचनात्मक दरारों को उजागर करता है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र लगातार वैश्विक संघर्षों (यूक्रेन, सूडान, गाजा), बढ़ते भू-राजनीतिक तनावों, आर्थिक मंदी, पुनरुत्थानशील एकपक्षवाद, और बहुपक्षवाद के संकट का सामना कर रहा है।

बजट की कमी इसकी परिचालन क्षमता को और सीमित करती है, जिसमें अमेरिका जैसी प्रमुख शक्तियाँ कभी-कभी धन रोक लेती हैं या प्रमुख एजेंसियों से हट जाती हैं, जिससे सामूहिक वैश्विक प्रबंधन की भावना कमजोर होती है। ये प्रवृत्तियाँ संयुक्त राष्ट्र की अक्षमता की धारणाओं को बढ़ाती

हैं और इसकी प्रासंगिकता पर सवाल उठाती हैं, खासकर जब इसकी सुरक्षा परिषद अक्सर P5 की वीटो-धारक शक्तियों के कारण गतिरोध में दिखाई देती है।

संयुक्त राष्ट्र सुधार का तर्क और अनिवार्यता

सुधार की माँग नई नहीं है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र के अस्सी वर्ष पूरे होने पर इसने अभूतपूर्व तात्कालिकता ग्रहण कर ली है। आज की दुनिया 1945 से बिल्कुल अलग है—वैश्विक अर्थव्यवस्था बारह गुना से अधिक बड़ी है, और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संरचनाएँ अभी भी औपनिवेशिक विभाजनों की विरासत को वहन करती हैं। जलवायु संकट, तकनीकी बदलाव (एआई, साइबर खतरे), बढ़ती असमानताएँ, और सीमा पार स्वास्थ्य आपातकाल जैसी नई चुनौतियाँ, अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के लचीलेपन का इस तरह से परीक्षण करती हैं जिसकी संस्थापक पिताओं ने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

UN80 पहल: परिवर्तन का खाका

महासचिव एंटोनियो गुटेरेस ने UN80 पहल शुरू की है—जो दक्षता, जवाबदेही और आधुनिक प्रासंगिकता पर आधारित एक व्यापक सुधार एजेंडा है। इस पहल के तीन मुख्य स्तंभ हैं:

1. **दक्षता बढ़ाना:** नौकरशाही की लालफीताशाही में कटौती, सचिवालय प्रबंधन को सुव्यवस्थित करना, और कुछ कार्यों को कम लागत वाले स्टेशनों पर स्थानांतरित करना।
2. **जनादेश का युक्तिकरण:** अधिक ध्यान और प्रभाव के लिए हजारों पुराने प्रस्तावों की समीक्षा और प्राथमिकता।
3. **संरचनात्मक पुनर्संरेखण:** एजेंसियों का संभावित विलय, दोहराव में कमी, और नवीन सहयोग रणनीतियाँ, जिसमें प्रौद्योगिकी त्वरक बनाना और ज्ञान केंद्रों के माध्यम से विशेषज्ञता को एकत्रित करना शामिल है।

हालाँकि, सुरक्षा परिषद सुधार जैसे अधिक गहरे परिवर्तन—सदस्य राज्यों पर निर्भर करते हैं, जिससे वैश्विक सहमति एक चुनौतीपूर्ण लेकिन आवश्यक पूर्व शर्त बन जाती है।

भारत की विकसित होती भूमिका और कद

भारत बहुपक्षवाद का एक प्रमुख प्रस्तावक है, जो ऐसे सुधारों की माँग करता है जो शक्ति और जनसंख्या के नए केंद्रों को स्वीकार करें। एक विस्तारित सुरक्षा परिषद के लिए इसकी वकालत जर्मनी, जापान और ब्राजील (G4) सहित एक गठबंधन द्वारा समर्थित है, साथ ही ग्लोबल साउथ के व्यापक वर्गों का भी समर्थन है। कुछ, विशेष रूप से चीन के विरोध ने प्रगति को रोक दिया है, लेकिन भारत का उदय कई क्षेत्रों में दिखाई दे रहा है:

1. **शांति स्थापना नेतृत्व:** भारत ने 50 से अधिक संयुक्त राष्ट्र मिशनों में लगभग 2,90,000 शांति सैनिकों का योगदान दिया है, जो लगातार शीर्ष सैन्य-योगदान करने वाले देशों में शुमार है।

2. **विकास और मानवीय नेतृत्व:** भारत की घरेलू विकास पहल (स्वच्छता अभियान, सभी के लिए स्वास्थ्य, सार्वभौमिक साक्षरता, बाल और मातृ स्वास्थ्य, आदि) संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के साथ निकटता से संरेखित हैं। कोविड-19 महामारी के दौरान इसकी वैक्सीन पहुँच ने 100 से अधिक देशों की सहायता की।
3. **ग्लोबल साउथ का समर्थन:** भारत सक्रिय रूप से दक्षिण-दक्षिण सहयोग का समर्थन करता है—लगभग 70 देशों में विकास परियोजनाओं को वित्त पोषित करता है। इसकी आवाज़ वैश्विक असमानताओं को पाटने और संयुक्त राष्ट्र के ढांचे के भीतर विकासशील देशों को सशक्त बनाने के लिए सुधारों की वकालत करने में गूंजती है।

सुधार की चुनौतियाँ

संयुक्त राष्ट्र की सीमाओं की व्यापक स्वीकृति के बावजूद, सार्थक सुधार को साकार करना बाधाओं से भरा है:

1. **निहित स्वार्थ:** P5 राष्ट्रों का वीटो और क्षेत्रीय गतिशीलता यथास्थिति को बनाए रखती है।
2. **भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता:** अमेरिका, चीन और रूस के बीच renouvele महाशक्ति प्रतिस्पर्धा महत्वपूर्ण संयुक्त राष्ट्र अंगों के भीतर आम सहमति-निर्माण को पंगु बना देती है।
3. **संसाधन की कमी:** बजट में कटौती और दाता थकान परिचालन चपलता को कम करती है।

भारत की आकांक्षाएँ, वैश्विक प्राथमिकताएँ

सुधार के लिए भारत की बढ़ती आवाज़ UN80 पहल द्वारा परिकल्पित बड़े परिवर्तन के साथ संरेखित है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र और एक उभरती हुई आर्थिक महाशक्ति के रूप में, शीर्ष निकायों—जिनमें सुरक्षा परिषद सबसे प्रमुख है—में भारत का पूर्ण और समान प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्र में विश्वसनीयता और ऊर्जा का संचार कर सकता है।

न्याय के कटघरे में हास्य

आठ साल के अंतराल के बाद **'जॉली एलएलबी 3'** ने वापसी की है, जिसमें अक्षय कुमार और अरशद वारसी ने एक बार फिर अपने 'जॉली' किरदारों को निभाया है। यह एक कोर्टरूम ड्रामा है जो व्यंग्य और सामाजिक नाटक का मिला-जुला रूप है। सुभाष कपूर द्वारा निर्देशित, यह फिल्म भूमि अधिग्रहण, किसानों की दुर्दशा और कॉर्पोरेट घरानों तथा हाशिए पर पड़े लोगों के बीच शक्ति के असंतुलन जैसे गंभीर मुद्दों को उठाती है।

समीक्षकों ने फिल्म का आम तौर पर गर्मजोशी से स्वागत किया है, जिसमें हास्य और भावुकता के मिश्रण की प्रशंसा की गई है। पटकथा को अक्सर तीखा बताया जाता है, खासकर इसके संवादों को जो गंभीर विषयों से भटके बिना हास्य का पुट प्रदान करते हैं। कुमार और वारसी के अभिनय के साथ-साथ सौरभ शुक्ला, हुमा कुरैशी और अमृता राव जैसे सहायक कलाकारों के प्रदर्शन को भी अक्सर फिल्म की ताकत बताया जाता है—प्रत्येक कलाकार अपनी भूमिकाओं में विश्वसनीयता और भावनात्मक गहराई जोड़ता है।

हालांकि, यह फिल्म अपनी कमियों से परे नहीं है। कुछ समीक्षकों को कथानक खिंचा हुआ लगा—157 मिनट लंबा महसूस होता है, खासकर जब कुछ दृश्य बेवजह खिंचते हैं या अति-नाटकीयता की ओर चले जाते हैं। कॉमेडी-ड्रामा का मिश्रण हमेशा संतुलित नहीं रहता; कभी-कभी हास्य गंभीरता को कम कर देता है, और इसके विपरीत भी। नाटकीय रूप से, कई लोगों द्वारा JLLB3 को फ्रेंचाइजी की सबसे कमज़ोर कड़ी माना गया है, खासकर इसके पूर्ववर्ती हिस्सों की तुलना में, जहाँ कहानी कहने का अंदाज़ ज़्यादा कसा हुआ था।

बॉक्स-ऑफिस के मोर्चे पर, फिल्म ने अच्छा प्रदर्शन किया है: पहले सप्ताह में भारत में लगभग 70-75 करोड़ का शुद्ध संग्रह किया, और सातवें दिन तक विश्व स्तर पर 108 करोड़ से अधिक की कमाई की। इसने ज़ोरदार शुरुआत की, खासकर अपने पहले सप्ताहांत में, यह दर्शाता है कि सामाजिक रूप से जागरूक मुख्यधारा सिनेमा के लिए दर्शकों की भूख अभी भी बनी हुई है।

निष्कर्षत:, 'जॉली एलएलबी 3' बेशक एकदम परफेक्ट नहीं है, लेकिन यह उन जगहों पर सफल होती है जहाँ यह मायने रखता है: प्रासंगिक प्रश्न उठाना, भावनात्मक प्रभाव डालना और हमें यह याद दिलाना कि कोर्टरूम ड्रामा मनोरंजक होने के साथ-साथ विचारोत्तेजक भी हो सकता है। फ्रेंचाइजी के प्रशंसक इसके प्रयास की सराहना करेंगे, भले ही यह हमेशा अपने पूर्ववर्ती हिस्सों की ऊँचाइयों को न छू पाए।

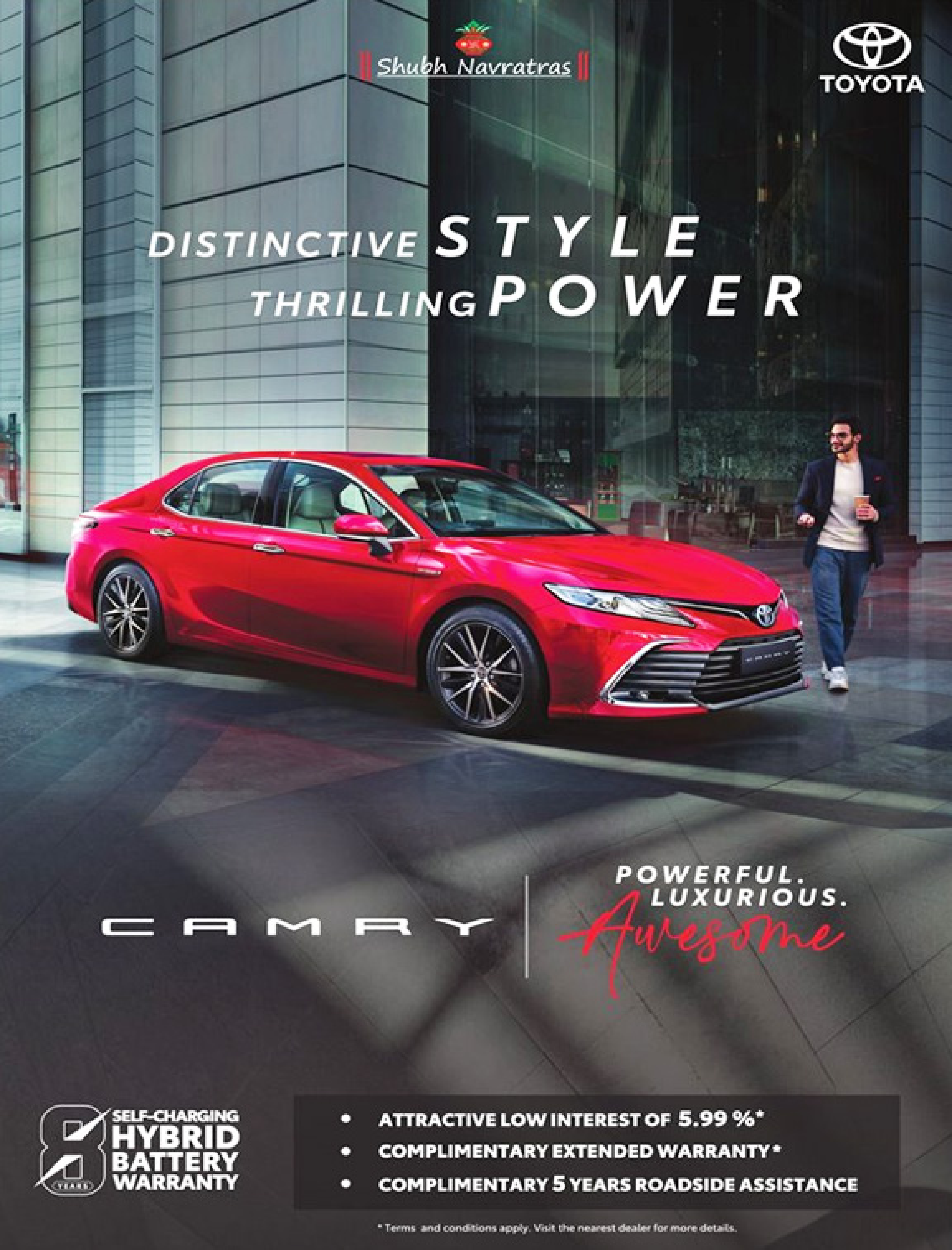
Shubh Navratras
TOYOTA
DISTINCTIVE STYLE
THRILLING POWER
CAMRY
POWERFUL.
LUXURIOUS.
Awesome
SELF-CHARGING
HYBRID
BATTERY
WARRANTY
• ATTRACTIVE LOW INTEREST OF 5.99 %*
• COMPLIMENTARY EXTENDED WARRANTY*
• COMPLIMENTARY 5 YEARS ROADSIDE ASSISTANCE
* Terms and conditions apply. Visit the nearest dealer for more details.

RNI TITLE CODE : DELENG19447

MARC SANITATION PVT. LTD.

A-2, S.M.A. Co-op. Industrial Estate, G.T. Kamal Road, Delhi-110 033

Ph: 27691410, Fax: 011-27691445/27692295 E-mail: info@marcindia.com Website : www.marcindia.com